इकाई–1

विश्व की प्रमुख सभ्यताएँ

सभ्यता शब्द का अर्थ उन संसाधनों और कला कौशल से है जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। सभा शब्द से बने सभ्यता शब्द का शाब्दिक अर्थ, उन मानव व्यवहारों का ज्ञान अथवा अनुशासन के वे नियम जिनसे बंधकर मनुष्य समाज में सामूहिक जीवन का आचरण करता है। सभ्यता उपयोगिता मूलक सामाजिक अनुशासन है जो मानव को पशु से अलग करती है।

सभ्यता का सम्बन्ध मनुष्य के बाह्य स्वरूप अथवा भौतिक प्रगति से है। बौद्धिक चिन्तन द्वारा जब मनुष्य ज्ञान, नीति, आचरण एवं परम्पराओं की मानसिक प्रवृत्तियों का सृजन करता है वह उसकी संस्कृति है। सभ्यता और संस्कृति दोनों अंतः सम्बंधित है। सभ्यता शरीर है तो संस्कृति आत्मा है। संस्कृति से रहित सभ्यता निश्प्राण है तो सभ्यता से रहित संस्कृति अस्तित्वहीन है।

प्रारम्भिक सभ्यताओं का उदय लगभग 5000 ई. पू. यानि आज से 7000 वर्ष पहले विश्व के कुछ भागों में होने लगा। विशेष बात यह है कि प्रमुख सभ्यताओं का उदय नदी घाटियो में हुआ क्योंकि इन क्षेत्रों में स्थितियाँ सभ्यता के विकास के अनुकूल थी। इन सभ्यताओं की कुछ समान विशेषताएं थी यद्यपि इनमें से हर एक का अपना एक विशिष्ट चरित्र था और उसका मानव प्रगति में अपना विशेष योगदान रहा।

आदि मानव का इतिहास

सृष्टि की उत्पत्ति और मानव जीवन के अवतरण की कहानी अत्यंत रोचक है। एक अरब 85 करोड़ वर्ष की आयु वाली इस पृथ्वी पर करोड़ों वर्षों तक परिवर्तन होते रहे है। जलचर, रेंगकर चलने वाले, उड़ने वाले एवं अंत में स्तनधारी जीवों का शनैः शनैः उदय हुआ। स्तनधारी जीव से विकसित मानव पूर्वज बिना पूंछ के बंदर के समान निर्वस्त्र, कन्दमूल फल खाता था। गुफाओं व वनों में शरणागत था। इस आदि मानव का विकासकाल पांच लाख ई.पू. से पांच हजार ई. पू. तक अनुमानित माना गया है। इस युग को 'हिमयुग' कहा गया है। आदि मानव के विकास की इस दीर्घ यात्रा काल को प्रागैतिहासिक काल कहा जाता है। हाथ, वाणी और विचार इन तीन शक्तियों की महत्ती भूमिका आदि मानव से मानव बनने में रही है। उपलब्ध अवशेषों के आधार पर मनुष्य के इस प्रगतिकाल को पाषाणकाल और धातुकाल में विभक्त किया गया है। मानव प्रगति की कहानी को इतिहास कहते हैं। लिखना सीखने के पहले भी मानव इस धरती पर लाखों वर्ष रह चुका था यह सुदूर अतीत, जब मनुष्य ने घटनाओं का कोई लिखित विवरण नहीं रखा, प्राक् इतिहास कहलाता है। उसे हम प्रागैतिहासिक काल भी कहते है।

जहाँ प्रागैतिहासिक मनुष्य रहते थे, वहाँ के उत्खनन में पुराने औजार, मिट्टी के बर्तन, रहने के स्थान तथा मनुष्यों और जानवरों की हड्डियाँ मिली है। इन चीजों से मिली जानकारी को एक साथ जोड़कर विद्वानों ने एक विवरण तैयार किया था इस विवरण से मालूम हुआ कि प्रागैतिहासिक काल में क्या घटनाए घटी और मनुष्य कैसे रहते थे। अपने विकास काल में मनुष्य ने साथ–साथ मिलकर रहना तथा प्रकृति में पाए जाने वाले फलों तथा शिकारों की खोज में एक साथ जीना सीखा। पत्थर के औजार बनाना, कपड़े के रूप में जानवरों की खाल का इस्तेमाल करना तथा रहने के लिए घर बनाना सीखने में लाखों वर्ष लग गए। उसने बोलना, आग जलाना सीख लिया किन्तु इसके उपरान्त भी वह शिकार करके, मछली मारकर तथा प्रकृति में पाए जाने वाले भोजन को इकट्ठा करके ही जिन्दा रहता था। आदिमानव के विकास के इस काल को ''पाषाण युग'' कहा जाता है।

अब से लगभग 10,000 वर्ष पूर्व से ही मनुष्य तेजी से विकास करने लगा था। उस समय उसने अनेक प्रकार के उन्नत औजार बनाने आरम्भ कर दिए। इस काल को ''मध्य पाषाण काल'' कहा जाता है। भोजन इकट्ठा करने वाले से मनुष्य भोजन उत्पादन करने वाला बन गया। फसलों को उगाने

से मनुष्य के जीवन में ऐसे बड़े परिवर्तन हुए कि एक नया युग ही आरम्भ हो गया। इस युग को ''नवपाषाण काल'' कहा जाता है।

मानव के विकास से लेकर कुछ वर्षों बाद ही होमोसेपियंस या ''ज्ञानी मानव'' इस धरती पर प्रकट हो सके। मानव विकास के दौरान मानव वानरो की भांति दिखाई देता था लेकिन धीरे–धीरे उसने सीधा चलना सीखा, उसके दिमाग का आकार बढ़ा और वह ज्ञानी मानव बन सका जो कि सोच–समझ सकता था। होमोसेपियंस के प्रकट होने से लेकर अब तक के 30,000 वर्षों में मनुष्य में परिवर्तन होते आए है जो आज भी बंद नहीं हुआ है। जो परिवर्तन आज तक चलता आ रहा है वह है – इसकी संस्कृति में परिवर्तन। संस्कृति से तात्पर्य, रहने का ढंग, व्यवहार, जीविका कमाने का बेहतर तरीका निकालना, नया ज्ञान ढूंढना, कला और साहित्य में अपने विचारों को व्यक्त करना।

पुरातत्वविद्

चिर अतीत में रहने वाले हमारे पूर्वजों के दैनिक जीवन और उनके व्यवसायों पर रोशनी डालने के लिए टीलों और खंडहरो के रूप में पुराने स्थानों की खुदाई को जिन विद्वानों ने एक विज्ञान का रूप दिया है, उन्हें ''पुरातत्वविद्'' कहा जाता है। पुरातत्व का ज्ञान पुरातत्वविदों की देन है। इसने हमें लाखों वर्षों की मानव–प्रगति से परिचित कराया है।

पुरातत्व सामग्रियों का काल निर्धारण –

पुरातत्वविद् जिन वस्तुओं को ढूंढ़ निकालते हैं उनकी तिथि निर्धारित करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाते हैं। अगर ऐसे सिक्के या अभिलेख मिलते हैं जिन पर किसी राजा का नाम होता है तो उसके साथ मिलने वाली अन्य सामग्रियों की तिथि भी मोटे तौर पर निर्धारित की जा सकती है। विज्ञान ने यह मालूम करने में मदद दी है कि कोई वस्तु कितनी पुरानी है। सभी वस्तुओं में एक प्रकार का रेडियोधर्मी कार्बन होता है। जिसे कार्बन–14 कहते है। जब मनुष्य, पशु और पौधे जिन्दा होते है तब वे जिस मात्रा में वायुमण्डल से कार्बन–14 लेते है उसी मात्रा में रेडियो धर्मिता के कारण उसे खो देते है। जब कोई जीवित वस्तु नष्ट हो जाती है तब वायुमण्डल से नया कार्बन–14 नहीं लेती अपितु वह उसे एक निश्चित दर से खोती रहती है। किसी वस्तु में निहित कार्बन–14 की मात्रा का पता लगा कर वैज्ञानिक हमें यह बता सकते हैं कि वह वस्तु मोटे तौर पर कितनी पुरानी है। इसे तिथि निर्धारण की कार्बन–14 पद्धति कहते है।

पाषाण युग

पाषाण युग के मानव के औजार –

सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया उस समय प्रारम्भ हुई जब हमारे पूर्वजों में खुरदरे औजार बनाने का कौशल आ गया। ये औजार बहुधा ऐसे पत्थर के टुकड़ों से मिलते–जुलते थे, जो प्राकृतिक क्रियाओं से औजार जैसी शक्ल के बन या गढ़ गये थे। बहुत से प्राकृतिक कारणों से पत्थरों की पपड़ी उतर जाती है। प्राकृतिक रूप से पपड़ी उतरते देखकर ही शायद मनुष्य को यह प्रेरणा मिली होगी कि वह भी विभिन्न कार्यों के लिए पत्थर को गढ़कर औजार बना सकता है। पाषाण युग के औजार तीन मुख्य प्रकारों में मिलते थे : कुठार, गंडासे और रूखानी या शल्कर (छीलने वाले) औजार।

कुठार मुट्ठी में पकड़ा जाता था एवं किसी वस्तु को काटने के उपयोग में लाया जाता था। इससे किसी वस्तु को कुचलने का काम भी किया जाता था। यह पत्थर के टुकड़े के सख्त मध्य भाग से पपड़ी उतार कर बनाया जाता था। गंडासे संभवतः मांस काटने के लिए काम में लाए जाते थे, वे भारी पत्थर के एक ओर तेज नोंक बनाकर तैयार किए जाते थे। रूखानी या शल्कर औजार कुठारों और गंडासों की अपेक्षा छोटे और पतले होते थे, मगर उनके किनारे अधिक पैने होते थे। पाषाण युग के औजार यूरोप, अफ्रीका और एशिया के अनेक स्थानों पर मिले हैं। बाद में बहुत से औजार हड्डी और हाथी दांत के बनाए गए। इनके साथ ही धनुष–बाण और भाला भी ऐसे अस्त्र थे जो शत्रु से लड़ने, दूर की वस्तु पर ठीक निशाना लगाने के उपयोग आते थे। शिकारी इनकी सहायता से पशुओं के झुण्ड को उत्तेजित किए बिना चुपके से लगातार तीर अथवा भाले काफी दूरी से फैंक सकता था। उस समय धनुष ही सबसे उपयोगी हथियार था।

सामुदायिक जीवन का प्रारम्भ –

उत्तर–पाषाण युग में मनुष्य का मुख्य व्यवसाय शिकार करना और फल इकट्ठा करना था। इस युग में मानव

भोजन–सामग्री ढूँढ़ने के कार्य में साथी मानवों के साथ सहयोग करना सीख गया था। उसे यह ज्ञात हो गया था कि जब तक वह दूसरों से मिल–जुलकर नहीं रहेगा वह जिन्दा नही रह सकता है। अपनी रक्षा के लिए भी मिल–जुलकर रहना उसके लिए जरूरी हो गया था। समुदाय का आकार इलाके में उपलब्ध फलों की मात्रा तथा शिकार किए जाने वाले जानवरों की संख्या पर निर्भर करता था। ये समुदाय या कुल एक ही जगह पर बहुत दिनों तक बसे हुए नहीं रह पाते थे। उन्हें ऋतुओं के बदलने पर पशुओं के साथ ही अपना स्थान परिवर्तन करना पड़ता था।

पाषाण कालीन मानव में संभवतः स्वामित्व या निजी सम्पत्ति की भावना विकसित नहीं हुई थी। ऐसा माना जाता है कि उस समय पुरूषों और स्त्रियों का स्तर समान था और सामाजिक असमानताओं का जन्म नहीं हुआ था।

पाषाण कालीन कला –

इस काल के मानव ने पहले अपनी गुफाओं की दीवारों पर रेखाएं खींच कर चित्र बनाए। उसने चित्रकला नक्काशी और मूर्ति कला में बहुत उन्नति की। कुछ गुफाओं की दीवारों और भीतरी छतों पर बहुरंगी चित्र मिले हैं जो "चित्र वीथियो" के समान लगते हैं। इन चित्रों और नक्काशियों में भागते हुए जंगली सांड, घोड़े, रीछ, बारहसिंघों, मैमथो (पुराकालीन हाथी) के झुंड तथा शिकार के बड़े दिलचस्प दृश्य दिखाई पड़ते हैं। मनुष्य और पशुओ की आकृतियां भी हड्डियों और हाथी दांत पर खुदी मिली। कला का उद्देश्य कुछ भी रहा हो, इसके अभ्यास से पाषाण कालीन मानव में सौन्दर्य बोध का विकास भी हुआ। उसने अपने निजी सामानों को सजाया तथा अपने औजारों पर नक्काशी भी की। हाथी–दांत, हड्डियों, पत्थरों और सीपियों से बने हार, कर्णफूल और दस्तबंद से अपने शरीर को भी सजाया।

1.1 पाषाण युगीय मानव औजार बनाते हुए

भारत में अनेक स्थानों पर पहाड़ियो की चट्टानों में बने निवास स्थानों में अनेक चित्र मिले है। इनमें से अनेक चित्रों की तिथियों को निश्चित करना कठिन है तथापि मध्य प्रदेश के भीमवेटका के चित्र पाषाण युग के समझे जाते है।

नवपाषाण युग

संक्रांति की अवस्था –

मानव ने मध्यपाषाण युग में काफी उन्नति की है जो पाषण युग को नव पाषाण युग से अलग करती है। इस युग में जो क्षेत्र पहले बर्फ से ढके हुए थे वहाँ धीरे–धीरे जंगल उग आए। बड़े पशु तो वहाँ से चले गए किन्तु मनुष्य ने कुत्ते को पालतू बना लिया। कुत्ता उसे शिकार में सहायता देने लगा। मध्य पाषाण युग की विशेषता छोटे औजारों का इस्तेमाल थी। इन छोटे औजारों को "लघुअश्म" कहते है। मध्यपाषाण युग के मनुष्य बर्फ पर चलने के लिए बिना पहिए की स्लेज गाड़ी का इस्तेमाल करते थे।

कृषि का आरम्भ –

भोजन इकट्ठा करने से अनाज उत्पादन में परिवर्तन एकाएक नहीं हो गया। यह परिवर्तन धीरे–धीरे मध्य पाषाण युग के लोगों के प्रयोगों से हुआ। पहले मानव को इस बात का ज्ञान नहीं था कि अनाज को उगाया भी जा सकता है क्योंकि उसने हर वर्ष अपने चारो और पेड़–पौधों को स्वभाविक रूप से उगते देखा। मानव ने भोजन के लिए अन्न प्राप्त करने का विश्वसनीय ढ़ग निकाल लिया। सबसे पहले कृषि–कार्य थाईलेंड, अरब तथा ईरान के मरूस्थलों की सीमाओं पर ऐसी घाटियो में प्रारम्भ हुआ जहां पानी की कमी नहीं थी जिन्हें "धन्वाकार उपजाऊ प्रदेश" कहते है। यह स्पष्ट है कि नवपाषाण काल में पशु–पालन और कृषि मनुष्यों द्वारा किये जाते थे।

बस्तियों का विकास –

जब मानव ने कृषि के अविष्कार को पूरी तरह अपना लिया तभी से नवपाषाण युग का प्रारम्भ हुआ। इस युग में जीवन इतना अधिक बदल गया कि इस युग को "नव पाषाण युगीन क्रांति" कहा जाता है। जब मानव ने कृषि करना प्रारम्भ किया तो उसे तुरन्त पता लग गया कि केवल बीज बोना पर्याप्त नहीं है। बढ़ते हुए पौधों की देखभाल करना भी आवश्यक है। जिसके चलते व्यवस्थित जीवन का प्रारम्भ हुआ। लोगों ने मिट्टी के

घरों तथा लकड़ी के खम्भों और घास–फूस के छप्पर से बने मकानों में रहना आरम्भ कर दिया। बस्तियां आमतौर पर उनके खेतो के नजदीक थी। बाद में ये ही बस्तियां विकसित होकर गांव बन गई और उन्ही मे से कुछ आरक्षित नगर बन गए। व्यवस्थित जीवन के फलस्वरूप ही संगठित सामाजिक जीवन का विकास हुआ।

मिश्रित कृषि का विकास –

नवपाषाण कालीन मनुष्यों ने खेती के साथ–साथ पशुपालन की भी शुरूआत की। जिसे "मिश्रित कृषि" कहा जाता था। पशुओं का मुख्य उपयोग दूध और मांस प्राप्त करने के लिए होता था। वे अभी माल ढोने या हल जोतने के काम में नहीं लाए जाते थे। कृषि के विकास के कारण विविध परिवर्तन हुए जो भोजन तुरन्त इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था उसको सुरक्षित रखना आवश्यक हो गया। फसल काटने के तुरन्त बाद सारा अनाज खर्च नहीं हो सकता था। उसे अगली फसल तक चलाना था और उसमें से बोने के लिए कुछ बीज बचाकर रखने की आवश्यकता थी। नवपाषाण कालीन बस्तियों में अनाज रखने के पात्र मिले हैं। इसी तरह पशुओं को भी सोच–विचारकर मारा जाने लगा। गायों को दूध देने और पशुओं की संख्या बढाने के लिए न मारा जाना ही ठीक समझा जाने लगा। अधिशेष अनाज खराब मौसम के समय और फसल खराब होने पर काम आता था और इससे बढ़ती हुई जनसंख्या का भी जीवन निर्वाह हो गया। खेतिहर अर्थव्यवस्था में अनाज के पर्याप्त भण्डार तथा उसकी बढती हुई उपलब्धि के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई। गांव बड़े होते गए और उनमें से कुछ नगर बन गए।

चिकने पत्थर के औजार – नवपाषाणकाल के औजारों की अपेक्षाकृत अधिक उपयोगिता और कुशल बनावट ही उन्हें पुरापाषाण कालीन औजारो से अलग कर देती है। नवपाषाण काल का एक महत्वपूर्ण औजार पत्थर की एक चिकनी कुल्हाडी थी। वह कुल्हाड़ी बढ़िया दानेदार पत्थर के टुकड़े से बनी होती थी। उसके एक सिर को गढ़ा जाता था और चिकना बनाया जाता था जिससे काटने वाला किनारा तेज हो जाए। उसकी सहायता से मनुष्य लकड़ी काटने और उसे मनचाहा रूप देने में समर्थ हुआ जिसके फलस्वरूप बढ़ईगीरी का विकास हुआ। नवपाषाण काल में मानव सुई और कांटेदार बर्छी, गुलेल जैसे औजार हड्डी तथा सींगों से बनाने लगा।

मिट्टी के बर्तनो का आविष्कार –

भोजन को रखने और पकाने के लिए बर्तनो की आवश्यकता हुई जिनसे अनाज तथा द्रव पदार्थ रखे जा सके और जो आग पर भी चढ़ाए जा सके। प्रारम्भ में सींको और टहनियों से बनी टोकरियों को फल तथा सूखी वस्तुऐं रखने के काम लिया जाता था। द्रव पदार्थ रखने के लिए उन्हें मिट्टी से पोत दिया जाता था। धीरे–धीरे मनुष्य ने मिट्टी के बर्तनों को आग में पकाना सीखा। नवपाषाण काल में मानव गोल पट्टियों और रेशो की रस्सियां बनाना जानते थे। उन्होने कुंडली वाले गोल बर्तन बनाना सरलता से सीख लिया। वे मिट्टी में रेत, पीसी हुई सीपी और कटा हुआ भूसा अच्छी प्रकार मिलाकर उसकी लम्बी रस्सी–सी बना लेते थे जैसा कि वे टोकरी बनाने के लिए करते थे। इन रस्सियों की कुंडलियां बनाकर एक के ऊपर दूसरी रखकर उन्हें चिपका लेते थे। फिर उन्हें मनचाहा आकार देते थे और पका लेते थे जिससे बर्तन सख्त हो जाते थे और उन पर पानी का कोई असर नहीं पड़ता था। मिट्टी के बर्तनो का आविष्कार सभी नवपाषाण कालीन सभ्यताओं की विशेषता है।

कातने और बुनने की कला का प्रारम्भ –

इस काल में खाल और पत्ती से बने घाघरो के स्थान पर मनुष्य सन, रूई और ऊन के बने हुए कपड़े पहनने लगे। 3000 ई.पू. के कुछ ही समय बाद सिंधु–घाटी में कपास उगाई जाने लगी थी। इसी समय के आस–पास इराक में ऊन का इस्तेमाल होता था। परन्तु कपड़ा तैयार करने से पहले कातने और बुनने की दो प्रक्रियाओं का आविष्कार तथा दोनों का एक साथ प्रयोग करना आवश्यक था। कातने के लिए तकली, तकुआ और बुनने के लिए करघे जैसी पेचीदा मशीन के आविष्कार मानव बुद्धि की महान सफलताएं है।

सामुदायिक जीवन में सुधार –

व्यवस्थित जीवन और खेती बाड़ी ने मनुष्य को अवकाश का समय दिया। खाली समय में वह पत्थर के औजार, कुदाल या बर्तन बना सकता था। कुछ लोग जिन्हें अपना भोजन उत्पन्न करने की जरूरत नहीं थी, अपने को हमेशा, दूसरे कार्यो में लगा सकते थे। इसके फलस्वरूप श्रम का विभाजन हुआ।

नवपाषाण काल में सामाजिक विषमताएं उत्पन्न नहीं हुई थीं। ऐसा माना जाता था कि खेती की जमीन सारे समुदाय की सम्पत्ति है। समुदाय अलग–अलग परिवारो को जमीन के टुकड़े खेती करने के लिए दे देता था या सारा समुदाय सम्मिलित खेतो पर काम करता था। धीरे–धीरे अलग परिवार अलग–अलग भूमि खण्डों के स्वामी हो गए और जमीन सारे समुदाय की सम्पत्ति नहीं रही। जमीन की भांति मकान, बर्तन और आभूषण भी अलग–अलग परिवारों की सम्पत्ति थे।

धार्मिक विश्वास –

अपने अस्तित्व की पृथक पहचान हेतु परिवारों का कोई समूह यदि किसी पशु या पौधे की आकृति को अपनी जाति या समूह का चिन्ह मान लेता था तो उसे उस समूह का ''कुल–चिन्ह'' कहा जाता था। इसी प्रकार मृत व्यक्तियों को दफनाने के ढ़ंग से नवपाषाण कालीन लोगों के धार्मिक विश्वासों के विषय में कुछ ज्ञात होता है। मृत व्यक्तियों को हथियार, मिट्टी के बर्तन तथा खाने–पीने की चीजो के साथ कब्रों में दफनाया जाता था। उस काल में लोगों का मानना था कि जिन मृत पूर्वजो के शव जमीन में नीचे गड़े है, उनकी आत्माएं फसलों के बढ़ने में सहायता देती है। मनुष्यों का विश्वास था कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे और प्रकृति की अन्य शक्तियाँ कुछ असाधारण सामर्थ्य रखती है। इसलिए उस काल का मानव उनकी पूजा करके उन्हें प्रसन्न करने की कोशिश करता था। इस काल में बस्तियों में मिट्टी की बनी स्त्रियों की छोटी मूर्तियां मिली हैं जिन्हें ''मातृदेवी'' कहा जाता था।

पहिए का आविष्कार –

इसी काल के आस–पास मनुष्य ने पहिए का आविष्कार किया जिसके परिणामस्वरूप एक तकनीकी क्रांति हो गई। ऐसा माना जाता है कि मनुष्य ने सबसे पहले पहिए का प्रयोग मिट्टी के बर्तन बनाने में किया था। इसके बाद पहिए का प्रयोग गाड़ी खींचने के लिए किया होगा क्योंकि मनुष्य बिना पहिए की स्लेज गाड़ियों का प्रयोग तो पहले से ही जानता था। पहिए वाली गाड़ी के द्वारा सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना बहुत सरल हो गया था। जल्द ही ऐसी गाड़ी को खींचने के लिए पशु काम में लाये जाने लगे। कताई करने में भी पहिए का इस्तेमाल पहले से ही किया जाता था।

धातु युग

धातुओं की खोज और प्रयोग का मानव जाति के इतिहास में काफी महत्त्व है। उनके कारण ही सभ्यता की ओर संक्रमण आरम्भ हुआ। धातुओं से मनुष्य को एक ऐसी सामग्री मिल गई जो पत्थर से अधिक टिकाऊ थी और जिसका इस्तेमाल विविध प्रकार के औजारों, उपकरणों और हथियारों को बनाने के लिए किया जा सकता था। सर्वप्रथम जिस धातु को ढूँढ़ निकाला गया वह तांबा थी। जिस काल में मनुष्य ने पत्थर और तांबे का साथ–साथ इस्तेमाल किया उसे ''ताम्र–पाषाण काल'' कहते है। ताँबे के साथ टिन या जस्ते को मिलाकर कांसा नामक मिश्रित धातु बनाना आरम्भ कर दिया। कांसा तांबे से अधिक उपयोगी साबित हुआ। वह तांबे से अधिक सख्त होता था इसलिए मजबूत औजारो, हथियारो तथा उपकरणो को बनाने के लिए अधिक उपयोगी होता था। सभ्यताओ के विकास में कांसे के महत्व के कारण इस काल को ''कांस्य युग'' भी कहा जाता है।

इसके पश्चात लोहे की खोज हुई। इसकी खोज और प्रयोग से जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन आया वह था– सभ्यता का प्रसार। सभ्यता के प्रसार के परिणामस्वरूप विश्व के विभिन्न भागों के बीच व्यापार भी प्रारम्भ हो गया। परिवहन के साधनों में भी सुधार हुआ। व्यापार वस्तु–विनिमय के स्थान पर मुद्रा से होने लगा।

मिश्र की प्राचीन सभ्यता

मिश्र अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर पश्चिम में नील नदी द्वारा सिंचित एक देश है। नील नदी को विश्व की जीवन रेखा कहा गया है। नील नदी के दोनों ओर से समूचा प्रदेश मिश्र की सभ्यता के उदभव और विकास का क्षेत्र था। मिश्र में नाम मात्र की वर्षा होती है। वर्षा ऋतु में नील नदी अपने दोनो किनारो को काफी दूर तक बाढ़ के पानी से भर देती है और अपने साथ लाई उपजाऊ मिट्टी जमा करती है तथा मिश्रवासियों की खनिज, घास तथा हरियाली के द्वारा अन्य आवश्यकताओं को पूरा करती है। यदि इस प्रदेश में नील नदी ना बहती तो यह क्षेत्र भी सहारा मरूस्थल का ही मरूस्थलीय भाग होता। इसीलिए हेरोडोटस ने कहा कि, ''मिश्र नील नदी का वरदान है।''

राजनीतिक जीवन–

प्राचीनकाल में मिश्र करीब चालीस छोटे–छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। इन राज्यों के मध्य निरन्तर संघर्ष होता रहता था। परिणाम स्वरूप उतरी मिश्र एवं दक्षिण मिश्र दो राज्यों का निर्माण हुआ। इन राज्यों को भी 3400 ई.पू. एक करने का श्रेय मिनीज नामक राजा को जाता है। इस प्रकार मिश्र में राजनीतिक एकता का प्रादुर्भाव हुआ। राजनीतिक घटनाक्रमों के आधार पर मिश्र को तीन कालों में बांटा जाता है।

1. पिरामिडो का युग या प्राचीन राज्य (3400 ई.पू. से 2160 ई. पू.)
2. सामंती युग अथवा मध्यकालीन राज्य (2160 ई. पू. से 1580 ई.)
3. साम्राज्यों का युग अथवा नवीन राज्य (1580 ई.पू. से 650 ई.पू.)

   छठी सदी ई.पू. फारस ने मिश्र पर पर अपना अधिकार जमा लिया और 332 ई.पू. में सिकन्दर ने मिश्र की स्वाधीनता नष्ट कर दी।

सामाजिक व्यवस्था

सामाजिक वर्गभेद –

प्राचीन मिश्र की एक प्रमुख विशेषता सामाजिक असमानता का विकास है। समाज मुख्य रूप से तीन प्रमुख वर्गों में बंटा हुआ था तथा सभी लोगों का स्तर एक समान नहीं था। पहला वर्ग कुलीन लोगो का था जिसमें राजवंश, सामन्त, पुजारी या धर्माधिकारी लोग सम्मिलित थे। सिद्धान्ततः भूमि फराहों (राजाओं) के हाथ में थी, परन्तु व्यवहार में उसने इसे अधिकांशतः पुजारियों, पुराने राजाओ के वंशजो और सामन्तो में विभाजित किया हुआ था। इन जागीरो में दास काम किया करते थे। धर्माधिकारियों का भी समाज में बड़ा सम्मान था, सर्वसाधारण से मन्दिरों को काफी दान मिलता था। मन्दिरो की सम्पत्ति राजकीय करो से मुक्त होती थी। अतुल धन सम्पदा तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के कारण पुजारी वर्ग भोग–विलासी बन गया था।

दूसरा वर्ग मध्यम वर्ग का था इसमें लिपिक, व्यापारी, शिल्पी, बुद्धिजीवी, कारीगर तथा कुछ स्वतंत्र किसान थे। इनके पास अधिकारो की कमी थी फिर भी इनकी स्थिति सन्तोषजनक थी और प्रशासन में इनका प्रभाव था।

तीसरे वर्ग में किसान, मजदूर व गुलाम आते थे किसानों की संख्या सर्वाधिक थी परन्तु उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। सामान्यतः ये लोग खेतो के मालिक नहीं हुआ करते थे। उनकी स्थिति गुलामों के समान ही थी। उन्हें दिन–रात परिश्रम करना पड़ता था तथा अपनी आय का अधिकांश भाग करो के रूप में चुकाना पड़ता था इसके अतिरिक्त उन्हें कई प्रकार की बेगार भी करनी पड़ती थी। मजदूरों की स्थिति किसानो से भी अधिक शोचनीय थी उन्हें पर्याप्त मजदूरी नही दी जाती थी तथा उनसे क्रूरता के साथ बेगार ली जाती थी। समाज के सबसे निचले स्तर पर गुलाम या दास थे। सामान्यत युद्ध में पकड़े गए शत्रु सैनिक या ऋण ना चुकाने वाले नागरिक दास बना दिए जाते थे। दासो के प्रति व्यवहार पशुओं की भांति होता था। दासो को स्वामी की अवज्ञा करने पर सख्त सजा दी जाती थी।

परिवार –

मिश्र के समाज की इकाई परिवार था। परिवार में माता–पिता, भाई–बहिन, पुत्र–पुत्री आदि संयुक्त रूप से रहते थे। प्रागैतिहासिक काल में परिवार मातृसत्तात्मक रहे होंगे परन्तु ऐतिहासिक काल में पितृसत्तात्मक प्रथा ही पाई गई थी। विधि अनुसार केवल एक ही पत्नी होती थी, लेकिन समृद्ध पुरूष अनेक उपपत्नियाँ रखते थे। परिवार के सदस्यों में पारस्परिक स्नेह को अत्यावश्यक गुण माना जाता था।

स्त्रियों की प्रतिष्ठा –

मैक्समूलर के अनुसार मिश्री सभ्यता में स्त्रियों का बहुत सम्मान था। विवाह स्थिर करते समय कन्या की राय ली जाती थी। विवाहोपरान्त परिवार में पत्नी को हर मामले में पति के समान माना जाता था। पिता की मृत्यु के उपरान्त उसकी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी उसकी सबसे बड़ी लड़की होती थी। स्त्रियों को पर्याप्त सामाजिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त थी। चित्रों में उन्हें घूमते हुए तथा व्यापार करते हुए और सार्वजनिक भोजों में भाग लेते हुए दिखाया है। कुछ रानियों जैसे हेपसेपसूत (हटशेप थुत) और क्लीयापेट्रा ने शासन प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया था।

खान–पान व रहन–सहन –

मिश्री सभ्यता के उच्च वर्गों तथा निम्न वर्गों के लोगों के रहन–सहन में भारी अन्तर था। अधिकांश लोग मिट्टी के घरों में रहते थे। कुलीन लोगों के घर अवश्य ही विशाल तथा सुख–सुविधा से सम्पन्न होते थे। कमर के नीचे लुंगी के जैसा कपड़ा या चमड़ा लपेटा जाता था। धनी लोग बहुमूल्य वस्त्र धारण करते थे। स्त्रियाँ जूड़े बाँधती थी और लिपिस्टिक, सुगन्धित तेल तथा गालों की सुर्खी का प्रयोग करती थी। पुरूष दाढ़ी बनाते थे।

मिश्र के लोग विभिन्न प्रकार के अन्न जैसे – गेहूँ, जौ, चावल, तिलहन तथा विभिन्न सब्जियों का भोजन में उपयोग करते थे। फलों में खजूर का प्रयोग अधिक किया जाता था। माँस और मदिरा का प्रचलन भी था।

उच्च वर्ग के लोग विशाल हवादार भवनों में रहते थे जिनके वातायनों और द्वारो पर गहरे रंगों में रंगे पर्दे पड़े रहते थे और फर्शों पर भारी दरियाँ बिछी रहती थी। उनके कमरे सुन्दर पलंगो, आलमारियों तथा और बहुमूल्य पाषाणों, स्वर्ण, रजत तथा ताम्र के पात्रों से सुसज्जित रहते थे।

इसके विपरीत निर्धन लोग गन्दे मोहल्लों तथा छोटी–छोटी झोपड़ियो में रहते थे जिनमे न तो पर्याप्त प्रकाश और न ही स्वच्छ हवा उपलब्ध थी। मिश्रवासी ऋतुओं के 6 त्यौहार मनाते थे। मल्ल युद्ध, पशु–युद्ध, पासे के खेल प्रचलित थे। नृत्य संगीत तथा संगीत के वाद्य बजाना भी मनोरंजन का तरीका था।

धार्मिक जीवन –

प्राचीन मिश्र के लोगों के जीवन में धर्म का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। उनके धार्मिक जीवन में बहुदेववाद देवताओं का मानवीकरण, मन्दिर और मूर्तियाँ, पुरोहित का धार्मिक कर्मकाण्ड, भेंट–पूजा और बलि, जादू–टोना, तंत्र–मंत्र, अन्धविश्वास, प्राकृतिक शक्ति की उपासना, पेड़–पौधे और पशु–पक्षियों की पूजा, आत्मा के अमरत्व में विश्वास, पुनर्जन्म और कर्मवाद की भावना तथा विधिवत मृतक संस्कार आदि की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।

1.2 ममी

मिश्री देव समूह काफी विशाल था। उनके अधिकांश देवता प्राकृतिक थे। उनके प्रमुख देवताओं में सर्वप्रमुख सूर्य, चन्द्र, नील, पृथ्वी, पर्वत, आकाश, वायु, वृक्ष, वनस्पति इत्यादि थे।

सूर्यदेव एमन–रे –

सूर्य की उपासना मिश्र में विभिन्न नामों और रूपों में होती थी। उत्तरी मिश्र में उसे 'रे' कहा जाता था। थीबिज में उनका नाम 'एमन' था। दक्षिणी मिश्र में उसकी उपासना 'होरूस' के नाम से होती थी। कालान्तर में उसका संयुक्त नाम 'एमन–रे' सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ।

ओसिरिस –

सूर्य देव के बाद पृथ्वी पर उनके प्रतिनिधि के रूप में ओसिरिस को पहला स्थान दिया गया था। यद्यपि उन्हें कहीं–कहीं सूर्य का पुत्र कहा गया है। उसकी पत्नी 'आइसिस' भी एक प्रमुख देवी थी।

परलोकवाद –

मिश्री धर्म में परलोकवाद को भी काफी महत्व प्राप्त था। वे मृत्यु को जीवन का अन्त न मानकर एक घटना विशेष मानते थे। उनका विश्वास था कि हर मनुष्य में एक शक्ति विशेष होती है। जो मृत्योपरान्त भी शरीर से चिपटी रहती है। इसके अलावा वे लोग 'आत्मा' में विश्वास रखते थे। वे पुनर्जन्म और कर्मवाद में विश्वास करते थे उनका विश्वास था कि पुण्यात्माओं का शीघ्र जन्म हो जाता है तथा पापात्माओं को घोर यातनाएं प्राप्त होती है।

मृतक समाधियाँ : पिरामिड –

मृतकों का विधिवत् संस्कार करना धर्म का एक मुख्य अंग समझा जाता था। उनका विश्वास था कि मृत्यु के उपरान्त आत्मा शुद्धि के लिए परलोक गमन करती है और शुद्धि के उपरान्त पुनः अपने मृतक शरीर में प्रवेश के लिए लालायित रहती है। इसी विश्वास के आधार पर वे मृतको के शरीर को नष्ट नहीं होने देते थे और विशेष मसालो की सहायता से उन्हें सुरक्षित रखते थे, जिसे 'ममी' कहा जाता है। इस ममी को विशाल पिरामिडो अथवा समाधियों में सुरक्षित रख दिया जाता था और उसके साथ मृतक की हैसियत के हिसाब से खाद्यान्न पदार्थ, फर्नीचर, आभूषण इत्यादि नाना प्रकार का सामान रख दिया जाता था। फरोहा तुतेनखामेन के पिरामिड से बहुत सी सामग्री मिली है।

आर्थिक जीवन –

कृषि वर्ग –

मिश्री समाज के आर्थिक जीवन का आधार कृषि वर्ग था। वे मुख्यतः गेहूँ, जौ, मटर, सरसों, अंजीर, जैतून, खजूर, फ्लेक्स, सन तथा अंगूर और अन्य अनेक फलों की खेती करते थे। लकड़ी का हल बैलों द्वारा खिंचवाया जाता था। मिश्र में कृषि कर्म आसान था। बिना हल चलाएं भी मिश्री किसान कई–कई फसल पैदा कर सकते थे। सिंचाई व्यवस्था का आधार नील नदी थी। उसमें आयी बाढ़ के जल को संग्रहित करने और खेतों तक पहुँचाने के लिए तालाबों और नहरों का जाल फैला हुआ था। सिंचाई के लिए जल, बाढ़ आने की सूचना, उपज बढ़ाने के लिए निःशुल्क सलाह देकर मिश्री सरकार कृषि कर्म में किसानो की सहायता करती थी। सौर पंचांग का आविष्कार किसानों की सुविधा के लिए हुआ था।

पशुपालन –

कृषि के साथ–साथ पशुपालन भी जीविका का एक प्रमुख साधन था। अनेक लोग चरवाहों के रूप में जीविकोपार्जन करते थे। साधारणतया मनुष्य गाय, बैल, खच्चर, घोड़ा, बकरा–बकरी, भेड़, गधे, मुर्गे, सुअर व बत्तख पालते थे।

उद्योग–धन्धे –

मिश्र में पाषाण, इमारती लकड़ी और खनिज पदार्थों के अभाव के कारण उद्योग–धन्धों के विकास की सुविधा बहुत कम थी। लेकिन इस अभाव की पूर्ति वे पड़ोसी देशों से आयात करके पूरी कर लेते थे। न्यूबिया से सोना तथा हिट्टाइट से लोहा मंगवाना पड़ता था। लोहे और तांबे के औजार बनाने में वे लोग निपुण थे। उन्हें धातु पिघलाना भी आता था। वे ताम्बा और टिन को मिलाकर कांसा बनाने की कला में भी दक्ष थे। सोने–चांदी के विभिन्न आभूषण बनाने तथा उन पर मीनाकारी करने के काम में भी उन्होंने दक्षता प्राप्त कर ली थी। असीरिया, न्यूनिया से वे देवदारू, हाथीदाँत और आबनूस का आयात करके इनसे अपने फरोहाओं और सामन्तों के लिए बहुमूल्य फर्नीचर उपकरण बनाते थे पशुओं के चमड़े व खालों से वे भाँति–भाँति के वस्त्र और ढाल इत्यादि और हल्की नावें, चप्पले, चटाइयाँ और रस्सियाँ बनाते थे। ईंटें बनाने की कला भी बहुत उन्नत थी। मिश्रवासी सूत और 'सन' के समान रेशे वाले पौधे से वस्त्र भी बनाते थे। लकड़ी, मिट्टी, शीशे व कागज का काम भी वे कुशलता से करते थे। वे लोग पेपिरस पौधे की छाल से कागज बनाते थे। अंग्रेजी भाषा का शब्द 'पेपर' पेपिरस से ही निकला है।

व्यापार–प्रणाली –

मिश्र में आवागमन और यातायात का प्रमुख माध्यम नील नदी थी। मिश्र का आन्तरिक और बाहरी व्यापार काफी उन्नत था। सूडान, मेसोपोटामिया, अरब और भारत से उसके व्यापारिक सम्बन्ध काफी घनिष्ठ थे। मिश्र खाद्यानों, बर्तनों, काँच की वस्तुओं, कागज, फर्नीचर आदि का निर्यात करता था तथा विभिन्न प्रकार की धातुओं, लकड़ी, रंग, मसाले, चन्दन, श्रृंगार प्रसाधन की वस्तुओं का आयात करता था। विनिमय का माध्यम अदल–बदल की प्रणाली तथा सोना–चाँदी थी। मिश्र में काफी विकसित व्यापार प्रणाली थी। व्यापारियों में लिखित अनुबन्ध होता था। वस्तुओं के लिए आजकल की भाँति आदेश दिया जाता था और प्राप्त माल की रसीद देने की पद्धति भी थी।

शासन व्यवस्था –

केन्द्रीय शासन –

मिश्री शासन–व्यवस्था पूर्णतः धर्मतान्त्रिक (थियोक्रेटिक) थी। मिश्री नरेश सूर्यदेव 'रे' के प्रतिनिधि होने के कारण खुद देवता माने जाते थे। मृत्यु के बाद उनकी पूजा उनके पिरामिड के सामने बने मन्दिर में होती थी। सिद्धान्ततः फरोहा राज्य का सर्वेसर्वा होता था। वह राज्याध्यक्ष, सर्वोच्च सेनापति, सर्वोच्च पुजारी और सर्वोच्च न्यायाधीश भी होता था। इस प्रकार वे निरंकुश सत्ताधारी थे परन्तु उन्हें परम्पराओं का पालन करना पड़ता था।

प्रशासनिक कार्यो में सलाह के लिए 'सरू' नाम एक परिषद् होती थी। किन्तु उसकी सलाह मानना फरोहा के लिए अनिवार्य नहीं था। प्रशासन के कार्यों के लिए एक प्रधानमंत्री तथा अन्य कर्मचारी भी होते थे।

प्रान्तीय व्यवस्था –

प्रशासकीय सुविधा के लिए मिश्र लगभग 40 प्रान्तों में विभाजित था। प्रान्त को 'नोम' प्रान्तीय अधिकारी को ''नोमेन'' अथवा नोमार्क कहते थे। इसकी नियुक्ति फरोहा करता था। प्रान्तीय सूबेदार लगान वसूली, शान्ति व्यवस्था एवं न्याय का कार्य करता था। प्रायः प्रमुख सामन्त ही इस पद पर नियुक्त होते थे।

नगरीय व्यवस्था –

साम्राज्य के बड़े नगरों का शासन फरोहा द्वारा नियुक्त अलग अधिकारी करते थे जो सीधे फरोहा के प्रति उत्तरदायी होते थे। साम्राज्य में गुप्तचर प्रणाली भी थी जो राजा तक दैनिक सुचनाएँ पहुँचाती थी।

शासन व्यवस्था में गुण–दोष –

प्राचीन मिश्र में शासन व्यवस्था उस युग की प्राचीनता के हिसाब से आश्चर्य जनक रूप से काफी विकसित थी। लेकिन निरंकुश राजतन्त्रों के समान उसकी सफलता भी राजाओं की योग्यता पर निर्भर थी।

मिश्र राज्य की सैन्य शक्ति अत्यन्त दुर्बल थी। सम्भवतः प्राकृतिक स्थिति के कारण से फराहो अपने राज्य को पर्याप्त सुरक्षित महसूस करते थे। सिविल (गैर सैनिक) पदाधिकारी ही प्रायः सैन्य–अधिकारी होते थे। अतः राजा के अयोग्य होने पर प्रान्तीय नोमेन का अत्यधिक महत्ताकांक्षी होना सामान्य बात थी।

न्याय व्यवस्था –

सैनिक पदाधिकारियों के समान मिश्र में न्यायाधीशों का भी अलग वर्ग नहीं था। प्रायः सिविल (गैर सैनिक) पदाधिकारी ही न्यायाधीशों के कर्तव्यों को पूरा करते थे। कुछ मामलो में फराहो को भी अपील की जा सकती थी। शेष मामलों में उच्च अधिकारी ही न्याय व्यवस्था का संचालन करते थे।

मिश्री समाज में दण्ड विधान काफी कठोर था। अंग–भंग, देश–निर्वासन शारीरिक यातनाएँ और गुरूत्तर अपराधों के लिए मृत्यु–दण्ड का प्रावधान था।

कला

वास्तुकला –

मिश्रियों के राष्ट्रीय जीवन में आदर्शों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति उनके पिरामिडों में हुई है। मिश्रियों ने पिरामिडों की रचना अपने राज्य और उसके प्रतीक फराहो की अनश्वरता और गौरव को व्यक्त करने के लिए की थी। ये भीतर से अलग–अलग कमरों में विभक्त हैं जिनमें मानव उपयोग की सभी आवश्यक और आरामदायक सामग्री रखी जाती थी। एक कक्ष में मसालों के लेप से युक्त ताबूत में बंद फरोहा का मृतक शरीर (ममी) रखा जाता था। पिरामिडों में खूफू द्वारा गीजा में बनाया गया पिरामिड सर्वाधिक प्रसिद्ध है। पिरामिड त्रिभुजाकार होते है। गिजा का विशाल पिरामिड जो तेरह एकड भूमि में बना है, और 480 फीट उँचा तथा 755 फीट लम्बा है इसमें ढाई–ढाई टन भार के 23 लाख पाषाण खण्ड लगे हैं। ये इतनी चतुरता से जोड़े गए हैं कि इनके बीच सुई भी नहीं घुसाई जा सकती है। हेरोडोटस के अनुसार इस पिरामिड् को एक लाख कारीगरों ने बीस साल में बनाया था। मिश्र के साम्राज्यवादी युग में पाषाणों से विशाल मन्दिर बनाये गये। कारनाक का मन्दिर अपनी विशालता और कलात्मक सौन्दर्य के लिए विख्यात है। इस

मन्दिर का मध्य कक्ष 170 फीट लम्बा और 338 फीट चौड़ा है। इसकी छत 16 पंक्तियों में बनाये गये 136 स्तम्भों पर टिकी है। इसी प्रकार आबू सिम्बेल का गुह मन्दिर 175 फीट लम्बा और 90 फीट चौड़ा है। इसका मध्य कक्ष 20 फीट ऊँचे आठ स्तम्भों पर टिका हुआ है जिसके साथ ओसिरस की विशाल ऊँची मूर्तियाँ बनी हुई हैं। लक्सोर का मन्दिर भी अपने कलात्मक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है।

मन्दिर के अतिरिक्त ओबेलिस्क तथा चट्टानी मकबरे भी मिश्री कला के अद्भुत नमूने हैं। ओबेलिस्क नीचे से चौड़े और ऊपर की ओर नुकीले पत्थर के भवन थे। जो अपनी निर्माण शैली के लिए प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा मिश्रवासी नगर–निर्माण कला में भी दक्ष थे। मेम्फीज, थीब्ज आदि नगर उनकी उन्नत नगर रचना के परिचायक है।

1.3 पिरामिड

मूर्तिकला –

मिश्री कलाकारों ने अपनी छैनी से पत्थरों तथा धातुओं को तराश कर देवी–देवताओं फरोहाओ तथा पशुओं की मूर्तियाँ बनाकर भव्य मूर्तिकला का विकास किया। खूफू (गिजा) के पिरामिड के सामने स्थित विशाल 'स्फिंग्स' (नृसिंह मूर्ति) विश्व की विशालतम मूर्ति है। इस मूर्ति का शरीर सिंह का है और सिर फराहो खूफू का है। थटमोज तृतीय और रमेसिस द्वितीय की कठोर पाषाण निर्मित मूर्तियाँ आकाश को छूती प्रतीत होती है। आबू सिम्बेल के मन्दिर में उदित होते हुए सूर्य की मूर्ति तथा अमेन होतप तृतीय के समय की शेरों की मूर्तियाँ अद्वितीय हैं।

चित्रकला –

मिश्री कलाकार अपने रिलीफ–चित्रों को विविध रंगों से रंगते थे। इसलिए इन्हें एक प्रकार से उभरे हुए चित्र कहा जा सकता है। मिश्री चित्रकला के नमूने मन्दिरों, पिरामिडों तथा भवनों के अन्दर की दीवारों पर विभिन्न रंगों में बने चित्रों के रूप में मिलते हैं। रानी हेपसेपसूत चित्रकला में निपुण थी। मिश्री चित्रकारों की कला में प्राकृतिक सौन्दर्य के अधिक दर्शन होते हैं।

धातुकला –

धातुकला के क्षेत्र में भी प्राचीन मिश्र ने काफी उन्नति की थी। धातुकारों ने सोना–चाँदी, ताँबा, कांसा आदि की मूर्तियाँ, अस्त्र–शस्त्र, रथ, मुकुट, सिंहासन, आभूषण, बर्तन आदि बनाए और सभी वस्तुओं के निर्माण में कला कौशल का परिचय दिया। इनमें 'पेपी प्रथम' की काष्ठ के ऊपर ताम्रपत्र चढ़ाकर बनाई गई मूर्ति विश्व प्रसिद्ध है। तूतेनखामेन की समाधि से स्वर्ण निर्मित बहुत सी वस्तुएँ मिली हैं जो उस युग की धातुकला की उन्नत अवस्था की प्रतीक हैं।

मिश्री लिपि –

प्राचीन मिश्रियों को लेखन कला के ज्ञान की आवश्यकता कई कारणों से पड़ी। उनके मृतक संस्कार में ऐसे अनेक मन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। मन्त्रों का भविष्य के लिए परिरक्षण केवल लिपि द्वारा ही सम्भव था। आर्थिक तथा प्रशासनिक दृष्टि से भी उन्हें लिपि की आवश्यकता पड़ी।

हाइरोग्लाफिक लिपि –

मिश्र की प्राचीन चित्राक्षर लिपि हाइरोग्लाफिक कही जाती है। हाइरोग्लाइफ यूनानी शब्द है– जिसका अर्थ है 'पवित्र लिपि'। इसमें 24 चिन्ह थे। जिनमें से प्रत्येक एक व्यंजन अक्षर का प्रतीक था। इस लिपि में स्वर नहीं थे। बाद में मिश्र निवासियों ने विचारों के लिए संकेतों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार चिन्हों की संख्या बढ़कर 500 हो गई तथा लेखन का विकास एक कला के रूप में हो गया। लिपिकों का समाज में प्रमुख स्थान था। वे पेपिरस नाम के पेड़ के पत्तों पर सरकंडे की कलम से लिखते थे। दीर्घकाल तक परिश्रम के बाद शैम्पोल्यी (1790–1832) नामक फ्रांसीसी विद्वान मिश्र की लिपि के सारे अक्षरों को पढ़ने में समर्थ हो गया।

विज्ञान –

मिश्रवासियों ने आधुनिक विज्ञान की भूमिका तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने गणित, ज्योतिष एवं खगोल के क्षेत्र में काफी प्रगति कर ली थी। अभीष्ट संख्या लिखने के लिए 1 से 9 तक के चिन्ह को बार–बार दोहराया जाता था। 10 तथा उसकी गुणन संख्याओं के लिए भिन्न–भिन्न चिन्ह थे। उदाहरण के लिए 1,10,100 के लिए अलग–अलग संकेत थे। उन्हें जोड़, बाकी (घटाना) और भाग की क्रिया की भी जानकारी थी। परन्तु वे गुणा से अपरिचित थे। सौर पंचांग का अविष्कार उनकी महत्वपूर्ण देन था। उनका वर्ष 365 दिन का तथा 12 महीने और महीने में 30 दिन होते थे। भोश 5 दिन देवताओं के नाम पर रखे गये। मृत देहों को औषधियों का लेप लगाकर सुरक्षित रखने की मिश्र निवासियों की प्रथा ने विज्ञान के विकास को प्रोत्साहित किया। इससे मानव शरीर के ढांचे से सम्बन्धित ज्ञान तथा शल्य क्रिया के कौशल में वृद्धि हुई।

मिश्र की सभ्यता की आधुनिक विश्व को देन –

मिश्र की सभ्यता का विश्व के इतिहास में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। मिश्रियों ने अन्य देशों से बहुत पहले संयुक्त राज्य स्थापित करने और इसके आधार स्वरूप राजनीतिक दर्शन और कानूनों का विकास करने में सफलता पाई। उन्होंने सिंचाई की सुन्दर व्यवस्था की, विशाल पिरामिडों और मन्दिरों का निर्माण किया तथा कागज, काँच और मृद्भाण्ड इत्यादि बनाने में निपुणता प्राप्त की। उनका कला बोध बहुत अच्छा था। वे दर्शन लेखन, साहित्य, गणित, विज्ञान आदि विद्याओं और शास्त्रों के ज्ञाता थे। कला के क्षेत्र में विशाल भवनों का निर्माण उनकी महत्वपूर्ण देन है। पिरामिड आज भी संसार के सात आश्चर्यों में एक गिना जाता है।

वर्तमान मानव सभ्यता अपने विकास के लिए मिश्री सभ्यता की ऋणी है।

प्राचीन बेबीलोन की सभ्यता

दजला और फरात नदियों के बीच जो भू–भाग (दोआब) है उसे मेसोपोटामिया के नाम से पुकारा जाता था। आजकल यह क्षेत्र इराक कहलाता है। इस क्षेत्र में क्रमशः सुमेरिया, बेबिलोनिया, असीरिया आदि सभ्यताओं का विकास हुआ था।

हम्मूराबी –

एमोराइट वंश का छठा शासक हम्मूराबी था। वह अपने युग का महान विजेता था। उसने लगभग 42 वर्षो (2123–2081 ई. पू.) तक शासन किया। हम्मूराबी एक महान् विजेता तथा बेबिलोनियन साम्राज्य का निर्माता था। परन्तु वह केवल एक विजेता ही नहीं अपितु वह एक योग्य शासक तथा कानून वेत्ता भी था। उसकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय हमें उसकी विधि संहिता से मिलता है। वह एक परिश्रमी, अनुशासनप्रिय एवं न्यायप्रिय शासक था। उसका अधिकांश समय प्रजा की भलाई के लिए व्यतीत होता था। उसने व्यापार–वाणिज्य तथा उद्योग–धन्धों के विकास की तरफ विशेष ध्यान दिया और इस सम्बन्ध में नये–नये नियम बनाए। पशुपालन में अभिरूचि तो उसका स्वाभाविक गुण था। अतः उसने इस कार्य में भी रूचि ली।

विधि संहिता के शीर्ष–भाग पर हम्मूराबी का उत्कीर्ण चित्र

राजनीतिक व्यवस्था

शासन व्यवस्था –

हम्मूराबी के काल में राजा की शक्ति में काफी वृद्धि हुई तथा उसकी निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता बढ़ने लगी लेकिन राजा क्रूर व अन्यायी नहीं थे। राज्य की सहायता के लिए मंत्रिपरिषद होती थी। शासन को कई विभागों में बांटा गया तथा उन विभागों का दायित्व पृथक–पृथक मन्त्रियों का होता था। मन्त्रियों की नियुक्ति तथा पदच्युति का अधिकार सम्राट को होता था। सम्पूर्ण साम्राज्य को शासन में सुविधा के लिए कई प्रान्तों में बांटा गया था प्रान्तों की शासन–व्यवस्था सामन्तों को सौंपी जाती थी जो सीधे राजा के प्रति उत्तरदायी थे।

विधि संहिता –

बेबिलोनिया की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन उसकी विधि–संहिता है। हम्मूराबी ने उस समय में प्रचलित नियमों का संग्रह करवाया तथा उन्हें सुविधाजनक बनाते हुए उसमें परिवर्तन करके एक विधान संहिता का निर्माण किया। इसको उसने 8 फीट ऊँचे एक पाषाण स्तम्भ पर 3600 पंक्तियों में उत्कीर्ण करवाया, जिसे बेबिलोन में मर्दुक के मन्दिर ए–सागिल में स्थापित किया गया। बाद में इसे एलम का शासक सूसा उठा ले गया। इस स्तम्भ की खोज फ्रांसीसी विद्वान एन.डी. मार्गन ने की थी।

हम्मूराबी की संहिता की भाषा सुमेरियन न होकर सेमेटिक है। इसमें कुल 285 धाराएँ हैं, जो वैज्ञानिक ढ़ंग से व्यक्तिगत सम्पत्ति, व्यापार और वाणिज्य, परिवार, अपराध और श्रम के अध्यायों में विभाजित है। इस संहिता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके कानून पूर्णतः धर्म निरपेक्ष हैं।

न्याय तथा दण्ड व्यवस्था –

हम्मूराबी ने कानूनों को नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए एक नई विधि संहिता बनाई। राजकीय न्यायालयों में न्यायाधीशों को स्वयं सम्राट नियुक्त करते थे तथा इन न्यायाधीशो को मनमानी करने से रोकने के लिए नगर के कुछ वयोवृद्ध व्यक्ति उनके साथ बैठाये जाते थे। निचले न्यायालयों के निर्णय के विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था भी शुरू की गई थी। अन्तिम अपील राजा के पास की जा सकती थी।

दण्ड व्यवस्था की संहिता में 'जैसे को तैसा' सिद्धान्त का प्रावधान था। अपराधी की जाँच पड़ताल के बाद सजा दी जाती थी। झूठी गवाही देने वालो को सख्त सजा दी जाती थी। अधिकांश अपराधों का निर्णय जल परीक्षा अथवा पवित्र शपथ से किया जाता था।

सामाजिक व्यवस्था

सामाजिक संगठन –

बेबीलोनियन समाज तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित था – श्रीमन्त अथवा उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्न अथवा दास वर्ग। उच्च वर्ग में जिसके सदस्य 'अवीलम्' कहलाते थे। उच्च पदाधिकारी मन्त्री, जमींदार और व्यापारी आदि इस वर्ग में सम्मिलित थे। यह वर्ग सुख–सुविधा से सम्पन्न था। बेबीलोन मध्यम वर्ग के सदस्य जो मस्केनम कहलाते थे, उच्च वर्ग के लोगो की तरह स्वतंत्र थे। इस वर्ग में व्यापारी, शिल्पी बुद्धिजीवी तथा राज्य के कर्मचारी, किसान और मजदूर भी सम्मिलित थे। यह समूह दासो से कुछ ऊपर की स्थिति में था। तीसरा वर्ग दासों का था जिन्हें ''वरदू'' कहा जाता था। वे अपने स्वामी की सम्पत्ति समझे जाते थे। उन्हें दागने की प्रथा थी तथा उन्हें विशेष प्रकार की पोशाक पहननी पड़ती थी। लेकिन फिर भी उन्हें कानून का थोड़ा संरक्षण प्राप्त था।

पारिवारिक जीवन –

बेबीलोनिया का पारिवारिक जीवन पितृसत्तात्मक था। समाज में परिवार के सदस्यों का पारस्परिक जीवन कानून द्वारा अनुशासित रहता था। परिवार में माता–पिता को लगभग समान अधिकार प्राप्त थे। पिता परिवार का मुखिया होता था और परिवार के सभी सदस्यों पर उसका कठोर नियंत्रण रहता था। परिवार की सम्पत्ति पर लड़के–लड़कियों का समान अधिकार माना जाता था।

स्त्रियों की स्थिति –

बेबिलोनियन समाज में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक थी और उन्हें काफी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उनके

पारिवारिक तथा अन्य अधिकार अनुमोदित थे। विवाह को कानूनी रूप देना आवश्यक माना जाता था। विवाह से पूर्व एक अनुबन्ध पत्र लिखा जाता था। तलाक, पुनर्विवाह आदि के सम्बन्ध में स्त्रियों की परिस्थिति को देखकर निर्णय लिया जाता था। तलाक की अवस्था में सभी को जीवन निर्वाह भत्ता माँगने का अधिकार था। स्त्रियों को व्यापार करने तथा राजकीय सेवा में जाने की भी अनुमति थी। साथ ही साथ स्त्रियों पर नियंत्रण भी पर्याप्त था। उन्हें पुरूषों के अधीन रहना पड़ता था। पुरूष एक से अधिक स्त्रियाँ रख सकता था। व्यभिचारिणी स्त्री को प्राणदण्ड दिया जाता था।

खान–पान, रहन–सहन –

बेबीलोनियन लोगों का मुख्य भोजन अन्न, फल, दूध, माँस तथा मछली थी। खजूर की ताड़ी को शराब की भांति पीया जाता था। पुरूष कमर के नीचे लम्बा वस्त्र पहनते थे। स्त्रियाँ ऊपर के अंगों को भी ढकती थीं। कुलीन लोग जरी का काम किये हुए वस्त्र पहनते थे। पुरूष सिर पर बाल रखते थे तथा दाढ़ी भी रखी जाती थी। स्त्रियाँ भी कई प्रकार के केश विन्यास करती थी। स्त्रियों को आभूषण अधिक पसन्द थे। लोगों का मनोरंजन संगीत तथा नृत्य से होता था। लोग मशक, बाँसुरी, तुरही, वीणा, ढोल, खंजरी आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग करते थे।

धार्मिक जीवन –

बेबीलोनिया के निवासी अनेक देवताओं में विश्वास रखते थे। उनके प्रमुख देवी–देवता– अन् (आकाश), शमस (सूर्य), सिन (चन्द्रमा), बेल (पृथ्वी), निनगंल (चन्द्रमा की पत्नी) आदि थे। नए देवताओं में ईश्वर और मारदुक प्रमुख थे। खेतों तथा नदियों के देवता पृथक् थे। देवी पूजा भी प्रचलित थी। ईस्तर उनकी प्रमुख देवी थी। प्रारम्भ में वे सृष्टि निर्मात्री के रूप में पूजी गई लेकिन बाद में वे प्रेम की देवी मानी गई। तामूज को वनस्पति का देवता माना जाता था। मारदूक पहले कृषि का देवता था लेकिन बाद में उन्हें तूफान का देवता माना जाने लगा।

बेबीलोनिया में अनेक मंदिर तथा मूर्तियाँ थी। लोग उनकी पूजा करते थे तथा तरह–तरह का चढ़ावा चढ़ाया करते थे। देवताओं की पूजा का काम पुजारी लोग करते थे। पुजारी लोग समाज के उच्च वर्ग में थे ये लोग सादा जीवन न जीकर सुख–भोग का जीवन जीते थे। मन्दिरों में देवदासी प्रथा नेउन्हें आंशिक पथभ्रष्ट किया।

बेबिलोनिया के लोग अंधविश्वासी भी थे। वे भविष्यवाणियों में अधिक विश्वास रखते थे। वे भूत–प्रेत, जादू–टोना आदि में भी विश्वास रखते थे।

बेबिलोनिया के लोग मृत्यु के बाद जीवन में विश्वास रखते थे इसलिए वे कब्रों में शव के साथ भोजन और दैनिक जीवन की अन्य वस्तुएँ भी रखते थे। लोग मृतकों को दफनाने के अतिरिक्त अग्नि संस्कार भी करते थे।

आर्थिक जीवन

कृषि –

प्रत्येक सभ्यता की तरह बेबीलोन के लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि कार्य ही था। यहाँ की भूमि बहुत उर्वर थी। हेरोडोटस के अनुसार प्राचीन विश्व में बेबिलोनिया से बढकर उपजाऊ प्रदेश अन्य नहीं था। कृषि कार्य हल तथा बैल से किया जाता था। खेतों को बाढ़ से बचाने के लिए बांधों का निर्माण किया जाता था। हम्मूराबी के वंश के प्रत्येक शासक ने नई नहरें बनवाई तथा पुरानी नहरों का पुनर्निर्माण करवाया। जहाँ पर नहरो की सतह खेतों की सतह से नीची होती थी वहाँ पानी ऊपर चढ़ाने के लिए 'सिंचाई–कल' का उपयोग होता था। बेबिलोनिया के निवासी खाद्यानों के अतिरिक्त खजूर, जैतून तथा अंगूर की पैदावार को महत्व देते थे। भूमि अधिकांशतः राजा, मन्दिर, सामन्तो तथा धनी व्यापारियों तथा सामूहिक रूप से कबीलों के अधिकार में थी। भूमि को उपज के लिए पट्टे पर दिया जाता था। किसानों को कुल पैदावार का 1/3 से 1/2 भाग राज्य को कर के रूप में देना होता था।

हम्मूराबी ने जमीन बेचने के कठोर नियम बनवाये। उसने नई भूमि पर खेती करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया। कृषि को नुकसान पहुँचाने वालों को दण्ड का प्रावधान था। अकाल तथा प्राकृतिक नुकसान होने पर कर माफ कर दिया जाता था। कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य मुआवजा भी देता था।

पशुपालन –

बेबिलोनियनों की राष्ट्रीय आय का दूसरा प्रमुख स्रोत पशुपालन था। बड़ी संख्या में पशु पाले जाते थे तथा पशुओं पर कर लगाया जाता था। गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर, गधे खच्चर आदि अधिक पाले जाते थे। शासक वर्ग तथा सम्राट भी बड़ी संख्या में पशुपालन करते थे। राजकीय पशुओं की देखभाल के लिए जिलों तथा शहरों में शाही चरवाहे नियुक्त किए जाते थे।

बेईमान कृषकों तथा चरवाहों को विधि संहिता के अनुसार कठोर दण्ड दिया जाता था।

उद्योग–धन्धे –

बेबिलोनियनों को अपने पशुओं से उद्योग–धन्धों के लिए काफी मात्रा में ऊन, बाल और चमड़ा इत्यादि प्राप्त हो जाते थे। इसके अतिरिक्त सूत कातना, कपड़े बनाना, मिट्टी के बर्तन एवं मूर्तियाँ बनाना, धातुओं के अस्त्र–शस्त्र, आभूषण, लकड़ी की वस्तुएँ बनाना आदि उद्योग प्रचलित थे।

व्यापार–वाणिज्य –

बेबिलोनियन लोग अधिकांशतः विलासिता की वस्तुएँ, इमारती लकड़ी, सीसा, कांसा, ताँबा, सोना–चाँदी का आयात करते थे। खाद्यान्न, अस्त्र–शस्त्र, धातु औजार, आभूषण, मूर्तियों का निर्यात किया जाता था। व्यापारिक सम्बन्ध दूरस्थ सिन्धु प्रदेश (भारत) तथा निकटवर्ती एलम के साथ बहुत प्राचीन काल से चलते आ रहे थे। विदेशी व्यापार का कार्य व्यापारिक काफिलों द्वारा होता था। माल ढोने का कार्य ऊँटो तथा गधों द्वारा करवाया जाता था। जहाँ जल यातायात की सुविधा उपलब्ध थी, वहाँ नौकाओं का उपयोग किया जाता था। बेबिलोन में अभी तक मुद्रा–प्रणाली का जन्म नहीं हुआ था। व्यापार वस्तु विनिमय या धातु विनिमय के द्वारा होता था। व्यापारिक सौदे लेखबद्ध किए जाते थे। बिल, रसीद आदि का प्रचलन भी शुरू हो गया था। समाज में व्यापारिक संघों का विकास भी हो चुका था।

कला

वास्तुकला –

बेबिलोनियन समाज, कला के क्षेत्र में, अपनी समकालीन सभ्यताओं से काफी पीछे था। क्योंकि यहाँ पाषाणों का अभाव था। अतः यहाँ कच्ची ईंटों के मकान बनाए जाते थे जो कि 50–60 वर्षों में धराशायी हो जाते थे। हम्मूराबी द्वारा निर्मित भवन अब तक पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं। राजभवनों में फिर भी पक्की ईटों का प्रयोग किया जाता था। छतों, दरवाजों, खिडकियों में लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। अमीरों के घरों में सजावट के लिए रंगीन टाइल्स का प्रयोग किया जाता था।

बेबिलोनियन कला के विशिष्ट नमूने 'जिग्गुरात' नामक भवन थे। बेबिलोन के जिग्गुरात में कई तल्ले होते थे। जो ऊपर की ओर छोटे होते जाते थे। जिग्गुरातों की कल्पना देव स्थान के रूप में की गई थी। जिग्गुरातों को विविध रंगो से रंग कर सुन्दर बनाया जाता था।

मूर्तिकला –

बेबीलोनियन कलाकार मानव सौन्दर्य को मूर्त रूप देने में विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सके। उनकी मूर्तियों में सौन्दर्य तथा अभिव्यक्ति का अभाव है। उनकी मूर्तियाँ कलात्मकता के स्थान पर विशालता के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी मूर्तियाँ पशु और मनुष्य की मिश्रित आकृति की होती थी।

चित्रकला –

बेबिलोनियाँ के कलाकार अपनी चित्रकला का विकास पूर्णरूप से नहीं कर सके थे। राजभवनों तथा मन्दिरो में ही चित्र अंकित किए जाते थे। चित्रों के मुख्य विषय जंगली पशु पक्षी थे।

संगीत एवं नृत्य –

बेबिलोनियन संगीत प्रेमी थे। बड़े भोजो में संगीत गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था। मन्दिरों में देवदासियाँ नृत्य तथा गायन किया करती थी। कई प्रकार के वाद्ययंत्रों का प्रयोग भी किया जाता था।

लिपि तथा साहित्य –

बेबिलोनियाँ के लोगों ने सुमेरियन कीलाक्षर लिपि को ही अपनाया था। इस लिपि में वस्तुओं का ज्ञान करने के लिए चित्र लेखों चिन्हो, संकेतों और चित्रों का प्रयोग किया जाता

था। जब यह बात निश्चित हो गई कि अमुक चिन्ह या चित्र से अमुक वस्तु का बोध होता है तो वस्तुओं के बारे में पहचानना सरल हो गया। मगर जब विचारो को व्यक्त करने की बात आती थी तो चित्र–लिपि से काम नहीं चलता था। उनकी लिपि में लगभग 300 शब्द खण्ड के रूप में संकेत चिन्ह थे। जिन्हे याद करना कठिन था। सुन्दर लेखन कला को बहुत सम्मान दिया जाता थे। वे लोग मिट्टी की तख्तियों पर लिखते थे। यहाँ के लोग सेमेटिक भाषा बोलते थे। शिक्षा का कार्य धर्माधिकारी करते थे।

साहित्य के क्षेत्र में बेबिलोनिया की देन महत्वपूर्ण मानी जाती है। उन्होंने विश्व के प्रथम श्रेणी के महाकाव्य की रचना की इसका नाम है – 'गिलगमेश'। इसकी कथा वस्तु बहुत रोचक है। गिलगमेश एरेक राज्य के प्रथम राजवंश का पाँचवा शासक था। बेबिलोनियन लोगों ने उसके साहसपूर्ण कार्यों की गाथाओं को एकसूत्र में पिरोकर एक नया रूप दिया। यह महाकाव्य 12 अध्यायों में विभाजित है, जो 12 महिनों के प्रतीक हैं। सम्पूर्ण महाकाव्य में मानव जीवन के संघर्षों का सजीव वर्णन किया गया है।

महाकाव्य के अतिरिक्त धार्मिक तथा नीति साहित्य की रचना भी हुई। धार्मिक साहित्य के मुख्य विषय थे – देवी–देवताओं की प्रार्थना तथा स्तुति का वर्णन।

विज्ञान

गणित –

व्यापारी होने के कारण बेबीलोनियन कला से अधिक व्यावहारिक–विज्ञान में रूचि रखते थे। उनकी गणना दशमलव तथा षट् दाशमिक प्रणाली पर आधारित थी। उनके अंको में केवल तीन अंक चिन्ह प्रयुक्त होते थे। एक चिन्ह 1 के लिए था जिससे एक से 9 तक की संख्या लिखी जाती थी। जैसे – 4 लिखने के लिए 1 को चार बार लिखा जाता था। दूसरा चिन्ह 10 के लिए था जिससे 10, 20, 30 लिखा जाता था। तीसरा चिन्ह 60 के लिए था जिसमें 60, 120, 180, 240 लिखा जाता था।

ज्योतिष –

बेबिलोनिया के लोगों की सर्वाधिक रूचि ज्योतिष में थी। वे बृहस्पति को मर्दुक, बुध को नेबू, मंगल को नेर्गल, सोम को सिंन, सूर्य को शमस शनि को निनिष तथा शुक्र को ईश्वर मानते थे। परन्तु ग्रहों अथवा देवताओं की गति–विधि का रहस्य जानना आसान काम नहीं था। यह विद्या केवल पुजारियों के पास थी। जिसका उपयोग वे यदा–कदा जीविकोपार्जन के लिए करते थे।

खगोल विद्या –

खगोल के क्षेत्र में बेबिलोन के लोगों ने आश्चर्यजनक प्रगति की थी। वे दिन तथा रात की अवधि का हिसाब लगा सकते थे। वे सूर्योदय एवं सूर्यास्त का ठीक–ठीक समय बता सकते थे। उन्होंने वर्ष को 12 महीनों में विभाजित किया था। इनके छः महीने 30–30 दिन के तथा छः महीने 29–29 दिन के होते थे। इस प्रकार उनका वर्ष 354 दिन का होता था। चौथे–पाँचवे वर्ष सूर्य तथा चन्द्र का मेल बैठाने के लिए एक अतिरिक्त माह जोड़ दिया जाता था। घड़ी का चक्र 12 घंटों का होता था। घंटे का 60 मिनटो में तथा मिनट का 60 सैकण्डो में विभाजन था जो आजकल समस्त विश्व में प्रचलित है, निश्चित रूप से बेबिलोन की ही देन है।

मानचित्र कला –

बेबिलोनिया के लोगों ने पहली बार प्रान्तों तथा नगरों के मानचित्र बनाए। बेबिलोन से प्राप्त 1600 ई.पू. के एक अभिलेख में एक वर्ग इंच में शात–अजल्ला प्रान्त का मानचित्र मिला है।

चिकित्सा शास्त्र –

हम्मूराबी के समय तक चिकित्सक एक विशिष्ट वर्ग के रूप में अस्तित्व में आ गए। सर्जरी भी अस्तित्व में आ चुकी थी। लेकिन लोगों के अंधविश्वासी होने के कारण उनका ओझा तथा भूत–प्रेतों में ज्यादा विश्वास था।

बेबिलोन की विश्व को देन –

विश्व सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में बेबिलोन की देन महत्वपूर्ण मानी जाती है। राजनीति के क्षेत्र राजत्व में देवत्व की भावना का विकास तथा मंत्रिपरिषद के मन्त्रियों को अलग–अलग दायित्व सौंपने की प्रथा भी उन्हीं की देन है।

कानून की संहिता लिखने वाला भी बेबिलोन ही था।

सामाजिक क्षेत्र में तीनों वर्गों को कानूनी मान्यता देना, कानून के द्वारा स्त्रियों की रक्षा करना आदि भी विश्व में सर्वप्रथम बेबिलोन में ही हुआ।

आर्थिक क्षेत्र में भूमि का हिसाब रखना, राजस्व वसूली का हिसाब, सरकार की तरफ से किसानों को कर माफ करना, मुआवजा देना, समर्थन मूल्य तय करना आदि भी बेबिलोन की ही देन है।

प्राचीन चीन की सभ्यता

चीन की सभ्यता का उदय 'ह्वांग–हो' (ह्वांग हो) नदी के निचले बेसिन में हुआ। इस नदी का उद्गम तिब्बत की पहाड़ियों से होता है। यह नदी लगभग 27000 मील लम्बी है। इसमें अत्यधिक मिट्टी घुली होने के कारण इसे पीत नदी भी कहते है। इस नदी में बाढ़ बहुत भंयकर रूप से आती है, इसलिए इसे 'चीन की विपत्ति,' 'भटकती नदी' या हजारों अभिशापों की नदी भी कहा जाता है।

राजनीतिक इतिहास

1. **शांग वंश –** सबसे प्राचीन चीनी वंश जिसके बारे में पुरातत्ववेत्ता हमें बताते हैं वह शांग वंश है, जिसके राजाओं ने 1766 ई.पू. से 1122 ई. पू. तक शासन किया। पुरातत्व संबंधी प्रमाणों से पता चलता है कि 14वीं सदी ई.पू. में शांग वंश के लोगों ने उच्च स्तर की संस्कृति का विकास कर लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि शांग लोगों के पड़ोसी संस्कृति के विकास में उनसे पिछड़े हुए थे इसलिए शांग राजाओं का प्रमुख कार्य उनसे अपनी प्रजा की रक्षा करना था। शांगवंश में 28 राजा हुए परन्तु पड़ौसी चारूवंश ने शांगवंश को हरा दिया।

2. **चाऊवंश :–** चाऊ वंश के शासकों ने 1122 से 225 ई. पू. तक शासन किया। चाऊ वंश के राजाओं ने शांग वंशीय संस्कृति के अच्छे तत्वों को सुरक्षित रखा। यह काल चीनी इतिहास का प्रथम स्वर्ण युग कहलाता है। इस युग में ही लाओत्से तथा कन्फ्यूशियस जैसे धार्मिक विचारक हुए। धातुओं के प्रयोग, सिक्कों का प्रचलन, बैंकिग पद्धति का विकास, भूमि सुधार, कागज छपाई एवं बारूद के अविष्कार तथा कला कौशल एवं ज्ञान–विज्ञान में वृद्धि के कारण यह राज वंश इतिहास में अमर हो गया।

3. **चिन वंश–** तीसरी सदी ई.पू. में (225 ई.पू. से 203 ई. पू.) चीन में तीन बड़े राज्य चिन, चु और चि थे। इसके राज्यकाल में चीन में प्रगति एवं समृद्धि का काल प्रारम्भ हुआ। उसने हर दिशा में सड़कों का निर्माण कराया ताकि सेना को कहीं भी शीघ्रता से भेजा सके। हुण आक्रमणकारियों को रोकने के लिए 1500 मील लम्बी, 22 फीट ऊँची तथा 20 फीट चौड़ी चीन की विशाल दीवार का निर्माण करवाया, जो संसार के सात आश्चर्यों में एक मानी जाती है। इसें 20 हजार गुम्बे, 23 हजार स्तम्भ और 10 हजार सुरक्षा चौकियां बनी हुई है। 221 ई. पू. में चीन का शासक हुआंग टी तीनों राज्यों का सम्राट बन बैठा। इसके नाम का अर्थ है प्रथम सम्राट। वह एक कुशल प्रशासक और महान विजेता था।

4. **हान वंश –** हानवंश ने 203 ई.पू. से 220 ई. तक शासन किया। इस वंश ने शासन व्यवस्था को सुदृढ़ कराया तथा सामन्त प्रथा का अंत किया। विश्व में प्रथम बार प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं का आयोजन भी इसी काल में हुआ। इसी वंश के काल में चीन एवं यूरोप के मध्य व्यापारिक संबंधों को बढ़ाने के लिए एक नया व्यापारिक मार्ग–'रेशम मार्ग' खोला गया।

हानवंश के उपरान्त चीन में कई शताब्दियों तक अराजकता फैल गई। 618 ई. में काओत्से ने तांगवंश की स्थापना की और 960 ई. में शुंग वंश के चाओ कुआंग चिंग ने नये राजवंश की नींव डाली।

शासन व्यवस्था –

सम्राट –

चीन में 'राजत्व में देवत्व' की भावना प्रचलित थी।

राजा ईश्वर का पुत्र व प्रतिनिधि समझा जाता था। वह धर्म, शासन, न्याय, कानून का सर्वोच्च अधिकारी था। वह सभी प्रकार के प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति करता था। हालांकि राजा सर्वोच्च था परन्तु वह देश की परम्परा तथा प्रजा की भावनाओं के अनुरूप ही कार्य करता था। इसके अतिरिक्त 'सेन्सर' नामक अधिकारी होता था जो प्रशासनिक देखभाल करने वाली परिषद् का अध्यक्ष होता था।

मंत्री मण्डल –

सम्राट की सहायता तथा सलाह के लिए एक प्रधानमंत्री तथा चार मंत्रियों की एक 'महा–परिषद' होती थी। जिसका अध्यक्ष राजकुमार होता था। इसके अतिरिक्त 6 सदस्यों वाली एक अन्य समिति होती थी जो अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली होती थी। ये सभी प्रकार के कार्य यथा–शिक्षा, लोकसेवा, धर्म, न्याय, संचार, वित्त, त्यौंहार, युद्ध, रक्षा, दण्ड, सार्वजनिक निर्माण आदि अलग–अलग विभाग सम्भालते थे।

प्रान्तीय व्यवस्था –

चीन का साम्राज्य अनेक भागों में बंटा हुआ था। सभी प्रान्तों की सीमा समान नहीं थी। प्रान्त के सर्वोच्च अधिकारी राजपुत्र या शक्तिशाली सामन्त होते थे। जिनकी नियुक्ति सम्राट करता था। इन अधिकारियों का मुख्य कार्य राज्य में सुरक्षा, राजस्व वसूली, न्याय, पत्र–व्यवहार का कार्य आदि थे। चीनी प्रान्तों को 'सेंग' कहा जाता था।

स्थानीय व्यवस्था –

'ग्राम' स्थानीय निकायों की सबसे छोटी इकाई थे। गाँव के परिवारों के मुखिया ग्राम के मुखिया को चुनते थे जो शासन के प्रति उत्तरदायी था। गांवों के समूह को 'हीन' कहते थे। प्रत्येक हीन के अन्तर्गत एक न्यायाधिकारी तथा एक राजस्व अधिकारी होता था। उससे बड़ी इकाई 'फू' थी जिसमें दो या तीन 'हीन' थे। दो–तीन हीन मिलकर 'टाउ' तथा दो–तीन टाउ मिलकर सैंग (प्रान्त) का निर्माण करते थे।

लोक सेवा आयोग –

चीन में प्रशासनिक अधिकारियों के चयन के लिए एक लोकसेवा आयोग होता था। जो प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करवाता था। इस पद्धति का सूत्रपात हान वंश के शासको ने किया था। इस परीक्षा में तर्कशास्त्र, दर्शन, आचार, न्याय, स्वास्थ्य, काव्य आदि विषयों पर प्रश्न पूछे जाते थे। यह पद्धति चीन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

कला –

स्थापत्य कला

प्राचीन चीन के नगरों में– महल तथा पैगोड़ा (बौद्ध मन्दिर) बनाए गए। चीन की विशाल दीवार प्राचीन चीन के निर्माण कौशल का अद्भुत नमूना है। इस दीवार की विशालता पर वाल्तेयर ने कहा था कि, ''इसकी विशालता के आगे मिश्र के अद्भुत पिरामिड चींटियों के घर लगते हैं।'' यह दीवार इतनी चौडी है कि इस पर गाडी चलाई जा सकती है। हर 200 मीटर के बाद इस दीवार में योद्धाओं के लिए मीनारें बनाई गई हैं जिससे वे पहरा दे सके। इसके अतिरिक्त नगरों की बसावट तथा मकानों की वास्तुकला भी उल्लेखनीय है।

चित्रकला–

चीन में चित्रकला सुलेख का भाग समझी जाती थी। चीनी चित्रकार मानवाकृति के स्थान पर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बनाना अधिक पसन्द करते थे। उनके चित्रों में दार्शनिक भावना और निजी अनुभूति की प्रधानता होती थी। मिट्टी, धातु और लकड़ी पर विविध प्रकार की नक्कशी और चित्र बनाकर उन्हें सजाने का शौक था। हान वंश में चित्रकला काफी उन्नत थी। उस काल का एक श्रृंगार दान तथा ढक्कन मिला है जिस पर एक पक्षी का चित्र अंकित है। यह चित्रकला का उत्कृष्ट नमूना है। हान वंश का प्रसिद्ध चित्रकार 'कुनाई चीह' था।

मूर्तिकला –

चीन में मूर्तियों के माध्यम से मानव सौन्दर्य का प्रदर्शन नैतिकता के विपरीत समझा जाता था। बौद्ध धर्म के प्रसार से पहले तक यहाँ केवल पशुओं की ही मूर्तियाँ मिलती हैं। बौद्धों के प्रसार के बाद बौद्ध सन्तों की भी मूर्तियाँ बनने लगी। पीकिंग के निकट एक मन्दिर में महात्मा बुद्ध की शयनावस्था की एक मूर्ति है, जिसे मूर्तिकला का एक उत्कृष्ट नमूना कहा जा सकता है।

चीनी कलाकार कांस्य की वस्तुएँ बनाने में विशेष रूप

से प्रवीण थे। उस समय के कटोरे, प्याले, तश्तरियाँ विविध प्रकार के पशुओं की आकृतियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। इन वस्तुओं पर जड़ाई तथा अलंकरण का काम भी काफी उत्तम किया जाता था।

सामाजिक जीवन

वर्गीकरण –

प्राचीन काल में चीन का समाज अनेक वर्गों में बँटा हुआ था। जन्म पर आधारित कोई वर्ग विभाजन नहीं था। व्यक्ति का महत्व और स्तर उसके कर्म पर निर्धारित था। चीन में सम्राट तथा राज्यों के स्वामियों का वर्ग सबसे उच्च समझा जाता था। शासक वर्ग के नीचे पाँच मुख्य वर्ग थे। ये बुद्धिजीवी, व्यापारी, कारीगर, किसान और दासों के वर्ग थे। भारत की तरह ही प्राचीन चीन में बुद्धिजीवियों तथा साहित्यकारों का बहुत आदर किया जाता था। चीन में व्यक्ति शिक्षा के द्वारा उच्च स्थिति को प्राप्त कर सकता था। किन्तु यह स्थिति सिद्धान्त रूप में ही थी, वास्तविक स्थिति इससे भिन्न थी। सामाजिक समानता कभी विद्यमान नहीं रही। शिक्षा इतनी महंगी थी कि धनी जमींदारों के सिवाय किसी के लिए शिक्षा प्राप्त करना असम्भव था।

यह बात बड़े महत्त्व की है कि तत्कालीन समाज में योद्धाओं की स्थिति नीची थी।

शिल्पी तथा व्यापारी की स्थिति मध्यम वर्ग के जैसी थी। किसानों और मजदूरों की स्थिति दयनीय थी। इन्हें बेगार भी करनी पड़ती थी। दासों का क्रय–विक्रय होता था। लेकिन उनके साथ दुर्व्यवहार नहीं होता था।

चीन में विद्वानों का एक अलग वर्ग था जिसे 'मन्दारिन' कहा जाता था। इस वर्ग के लोगों का काफी सम्मान था। इस वर्ग में नियुक्ति के लिए योग्य नवयुवकों को सार्वजनिक सेवा के लिए साहित्यिक विषय पढ़कर कठिन परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनी पड़ती थी। इस प्रकार एक विद्वान ही मन्दारिन वर्ग में प्रवेश पा सकता था।

परिवार –

चीनी समाज के परिवार में वृद्ध स्त्री तथा पुरूष का प्रमुख स्थान था। परिवार से पृथक होना असामाजिक समझा जाता था। परिवार पितृसत्तात्मक थे परन्तु माताओं को भी उच्च दर्जा प्राप्त था। परिवार में बड़ों का आदर आवश्यक था। परिवार में सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना थी। चीनियों का अपने पूर्वजों और उनके समय से चले आ रहे सिद्धान्तों या परम्पराओं में अटूट विश्वास था।

स्त्रियों की स्थिति –

प्राचीन काल के चीन में स्त्रियों की स्थिति काफी सम्मानजनक थी। कालान्तर में स्त्रियों की स्थिति कमजोर होती गई। पुरूषों की तुलना में उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। कन्या का जन्म अशुभ समझा जाता था। उन्हें परिवार का अस्थायी सदस्य माना जाता था। निःसन्तान होने पर पुरूष स्त्री को तलाक दे सकता था। पर्दा प्रथा भी व्यापक रूप से प्रचलित थी। फिर भी परिवार के भीतर उसे सम्मान दिया जाता था।

चीनी समाज की स्त्रियाँ दो वर्गों में विभाजित थीं–एक कुलीन तथा दूसरा सामान्य वर्ग। कुलीन वर्ग की स्त्रियों को उचित शिक्षा, संगीत, नृत्य तथा शासन में भागीदारी मिलती थी तथा सामान्य स्त्रियों को खेतों का काम करना पड़ता था।

विवाह की प्रथा कुछ–कुछ भारतीयों की तरह थी। विवाह माता–पिता की इच्छा के अनुकूल होते थे। वयस्क होने के पहले ही विवाह सम्बन्ध तय हो जाते थे। दहेज भी दिया जाता था।

खान–पान, रहन–सहन –

चीन में खान–पान तथा रहन–सहन भी वर्गों के आधार पर बँटा हुआ था। आर्थिक रुप से सम्पन्न लोग सुख–सुविधा के साथ भव्य भवनों में निवास करते थे। अच्छा भोजन करते थे। इसके विपरीत साधारण लोग मिट्टी के, घास–फूस के बने मकानों में रहते थे। उनका भोजन भी सामान्य स्तर का होता था। उनकी वेशभूषा साधारण होती थी।

चीनी लोगों के जीवन में त्यौहार, मेलों तथा पर्वों का विशेष महत्व था। ये लोग त्यौहारों पर अतिशबाजी भी करते थे। ये लोग कहानी–किस्से, शतरंज खेलना, नाटक, ताश आदि के शौकीन थे।

प्राचीन चीन के मुख्य धर्म –

ताओं धर्म तथा कनफ्यूशियस धर्म। इन दोनों धर्मों में लाओत्से और कनफ्यूशियस नाम के दो दार्शनिको की शिक्षाएँ संकलित हैं। बाद में यहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ।

धार्मिक जीवन

प्राचीन चीन के लोग अत्यन्त धर्मावलम्बी, प्राकृतिक भाक्तियों के उपासक थे। वे अस्त्र–शस्त्र, चूल्हा एवं पूर्वजों की भी पूजा करते थे। उनकी धार्मिक मान्यतायें सरल एवं परिश्कृत थीं। चीनी धर्म प्राचीन भारतीय सभ्यता के समान ही था।

प्रकृति पूजा– चीनी लोग आकाश (शांग–वी) और पृथ्वी (होऊ–तू) को पुरुष और स्त्री रूप में पूजते थे। आकाश को यंग और पृथ्वी को यिंग कहते थे। प्रारंभ में वे पर्वत, नदियों, वायु, वर्षा और सूर्य को भी पूजते थे। नववर्ष का उत्सव दो सप्ताह तक चलता था। बसन्त ऋतु उत्सव भी मनाते थे। वनस्पति पूजा का विशेष महत्व था।

पूर्वज पूजा– चीन का प्रत्येक परिवार पूर्वजों की पूजा करता था। पितरों का तर्पण प्रतिदिन करते थे। पूर्वजों की स्मृति में उत्सव, नृत्य–गायन, भोज आयोजित करते थे। उनकी मान्यता थी कि मृत्यु के बाद दिव्य आत्मा वायुमण्डल से अपनी संतानों की संकट के समय सहायता करती हैं। सम्राट को देवपुत्र माना जाता था। वह वर्ष में एक बार दैवीय वस्त्र पहन कर पृथ्वी व आकाश देवता को बलि अर्पित करता था। पितरों के मंदिर बनाये जाते थे। दैवी शक्तियों के प्रकोप से बचने के लिए धूप, दीप, सुगन्धित द्रव्य बलि आदि चढ़ाते थे। असंतुष्ट आत्मा प्रेत बनकर कष्ट देती हैं, ऐसी कथायें प्रचलित थीं। जादू–टोनों से प्रेतात्माओं को नियंत्रित करते थे। अनेक अंधविश्वास भी प्रचलित थे।

पूजा का हेतु– उपासना का उद्देश्य व्यावहारिक अधिक था। एहिक कल्याण हेतु, दीर्घ जीवन हेतु एवं अनिष्ट से रक्षा के लिये पूर्वजों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। पापकर्मों से विपत्ति, अपयश एवं अकाल मृत्यु तथा पुण्य कर्मों से समृद्धि, सौभाग्य, यश एवं दीर्घ जीवन मिलता है ऐसी मान्यता थी। बौद्ध धर्म के चीन में प्रवेश के साथ ही किसी संस्थागत धर्म का विकास हुआ। लाओत्से और कन्फ्यूशियस जैसे दो दार्शनिकों के आगमन से चीन में छठी शताब्दी ई. पू. में दो दार्शनिक सम्प्रदायों का उदय हुआ।

दर्शनः– प्राचीन चीनी लोगों ने दर्शन के क्षेत्र में भी अत्यधिक प्रगति की। चीन सौ दार्शनिक संप्रदायों के लिये प्रसिद्ध है। चीनी आत्म नियंत्रण में विश्वास रखते थे। वे सुख एवं वेदना के प्रति भावुक थे। चीनी दार्शनिकों ने परस्पर प्रेम, सहयोग और सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। वे शत्रु से भी शिक्षा लेते थे। मेन्सियस, कन्फ्यूशियस, लाओत्से और मोत्सू चीन के प्रमुख दार्शनिक हुए।

कन्फ्यूशियस– इनका जन्म चीन के 'लू' राज्य के अभिजातवर्गीय परिवार में 551 ई.पू. में हुआ। 3 वर्ष की अवस्था में पिता कुंग–फु की और 17 वर्ष की उम्र में माता की मृत्यु हो गयी। एक शिक्षक के रूप मे जीवन की शुरूआत की। तार्किक दृष्टि के कारण कन्फ्यूशियस ने सक्रिय होकर आनन्द की खोज हेतु चिन्तन किया। वृद्ध दार्शनिक लाओत्से से वार्त्तालाप किया परन्तु दोनों में मतैक्य नहीं हो पाया। कन्फ्यूशियस ने एक विद्यालय प्रारम्भ किया जिसमें वह इतिहास, सदाचार व काव्य विषयों की शिक्षा देता था। उसने तीन हजार विद्यार्थी तैयार किये। उसकी सद्चरित्रता से प्रभावित लू राज्य के राजा ने उसे प्रधान मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। उसने अपराधों पर रोक लगाई। लोगों में एकता और एकरसता लाने का प्रयत्न किया। एक जैसे वस्त्र, एक जैसा भोजन के लिये प्रोत्साहित किया। जागीरदारों की विलासी जीवन पद्धति से क्षुब्ध होकर उसने पद त्याग कर दिया। सामाजिक एवं नैतिक क्रान्ति लाने और शासक वर्ग को सामान्य जीवन जीने हेतु तैयार करने की आशा में 72 वर्ष की उम्र में उसकी मृत्यु हो गई।

कन्फ्यूशियस को उम्मीद थी कि चीन का कोई शासक उसे गुरू स्वीकार करेगा ताकि उसके विचारों का प्रचार–प्रसार हो सकेगा। उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पायी।

कन्फ्यूशियस की रचनायें–

(I) ई–चिन – दर्शन की पुस्तक
(ii) शी–चिंग – चीनी काव्य ग्रंथ
(iii) ली–चिंग – सदाचार का ग्रंथ
(iv) शू–चिंग – इतिहास का प्रलेख
(v) छुन–छिऊ–चिंग – बसन्त और शरद ऋतुओं का वर्णन।

उसके शिष्यों ने उसके उपदेशों और सिद्धान्तों का एक ग्रंथ तैयार किया जिसे लुनचुई कहते है।

कन्फ्यूशियस की शिक्षायें

1. विद्यालयों में इतिहास, धर्म और शिष्टाचार के अतिरिक्त कुछ नहीं पढ़ाना चाहिये। शिक्षा चरित्र निर्माण का प्रमुख साधन है। उच्च शिक्षण संस्थाओं में साहित्य, काव्य और विज्ञान पढ़ाना चाहिये। समाज में शिक्षक का समुचित आदर होना चाहिये।
2. माता–पिता ही प्रमुख तीर्थ हैं। उनका सम्मान होना चाहिये। सभी के प्रति विनम्र व्यवहार, गुरू का आदर, कर्तव्य–पालन और मित्र के प्रति सद्‌व्यवहार करना चाहिये। असत्य भाषण , क्रोध, ईर्ष्या , निन्दा का त्याग करना चाहिये।
3. राजनीतिक सिद्धान्तों में वह राजा को देवसम मानता था। सम्राट में दैवीय गुण उत्पन्न हो। अत्याचारी सम्राट को जन विद्रोह से हटाया जाना चाहिये। सत्ताधारी शक्ति का दुरूपयोग न करे। राज्य के अधिकारी व कर्मचारी दयावान, धैर्यवान, निष्पक्ष, न्यायप्रिय और निर्भय हों। जनता ईमानदारी से कानून का पालन करे।
4. अंधविश्वास, धार्मिक प्रपंचों से बचने और यथार्थवादी होने पर जोर दिया।
5. दूसरों के लिये जीने वाला ही सच्चा मानव है।
6. सदाचारी, कर्त्तव्यपरायण और स्वार्थरहित मानव बनने के लिये दया, ज्ञान, न्याय, सत्यता और सेवा आदि पंचगुण आवश्यक बताए।

कन्फ्यूशियस द्वारा कथित अनेक कहावतें भी प्रसिद्ध हैं जैसे –

"जो कुछ तुम अपने साथ किया जाना पसंद नहीं करते वह दूसरों के साथ मत करो"

"चोट का बदला न्याय से दो और दयालुता का बदला दयालुता से दो"।

"जब तुम जीवन को नहीं समझते तो मृत्यु को क्या समझोगे।"

"जो व्यक्ति गलती को सुधारता नहीं वह दूसरी गलती कर रहा है।"

लाओत्से –

चीन के होनान् प्रांत के निर्धन परिवार में 604 ई.पू. में लाओत्से का जन्म हुआ था। चाऊ वंश के समय वह राज्य पुस्तकालय का संरक्षक रहा। राजनीतिक हस्तक्षेप से क्षुब्ध होकर उसने पद त्याग दिया और गाँव में रहने लगा। उसका मूलनाम 'ली' था उसने लाओत्से अर्थात् प्राचीन आचार्य की उपाधि ग्रहण की। पुस्तकालय में रहते हुए उसने ताओ–ते–चिंग नामक पुस्तक में अपने विचारों को संग्रहित किया। ताओ का अर्थ मार्ग होता है। अतः उसकी विचारधारा 'ताओवाद' कहलाती है।

लाओत्से की प्रमुख शिक्षायें–

1. भौतिकवाद की शिक्षा दुर्जन व्यक्तियों की वृद्धि करती है। भौतिक ज्ञान कोई गुण नहीं है। मनुष्य को प्रकृतिवादी होना चाहिये। प्रकृति प्रदत्त सरल, सादा जीवन यापन करना चाहिये।
2. राज्य की उन्नति के लिये न्यूनतम शासकीय नियंत्रण होना चाहिये। शक्ति से अहंकार में वृद्धि होती है जो पतन की ओर ले जाती है।
3. ग्रामीण कुटीर उद्योगों से ही सामाजिक स्वतंत्रता संभव है।
4. शत्रु के साथ भी मित्रवत् व्यवहार होना चाहिये। हानि के बदले दया, कठोरता के बदले कोमलता और बुराई के बदले अच्छाई का व्यवहार होना चाहिये।
5. शांति ही विकास का ताओ (मार्ग) है।
6. युद्ध व्यर्थ है, निर्दोष व्यक्ति मारे जाते हैं। अतः शांति का जीवन ही सही मार्ग है।

मैन्शियस– 378 ई. पू. से 288 ई.पू. के मध्य मैन्शियस नामक चीनी दार्शनिक ने कन्फ्यूशियस के विचारों का प्रचार किया। वह यथा राजा तथा प्रजा में विश्वास करता था। उसका विचार था कि मनुष्य में जन्म से अच्छाई निहित होती है उसे जानने की आवश्यकता है। बुद्धिमान राजा वही होता है जो प्रजा की निर्धनता को दूर करे। युद्ध नहीं करे। राजतंत्र श्रेष्ठ है क्योंकि प्रजातंत्र में प्रजा को शिक्षित होना पड़ता है। जो दुष्कर कार्य है। वह प्रजाहित विरोधी राजा के विरूद्ध जनता को विद्रोह का अधिकार देता है। परस्पर प्रेम, भ्रातृभाव और सामाजिक समन्वय पर उसने सर्वाधिक बल दिया।

मोत्सू – उच्च कोटि का चीनी दार्शनिक मोत्सू शुंग राज्य का मंत्री था। शांतिदूत एवं श्रेष्ठ अर्थशास्त्री था। परस्पर भेदभाव से रहित प्रेम ईश्वर की इच्छा मानता था। कुछ व्यक्ति विलासिता की वस्तुओं का उपयोग करें इसके स्थान पर समाज के अधिकतम व्यक्तियों की आवश्यकता पूर्ति हेतु उत्पादन करना

चाहिये। युद्ध घृणित कार्य है जो अज्ञानी व्यक्ति करते हैं। ईश्वर को शांग–टी और मनुष्यों को ति–येन कहता था। परम सत्ता की प्रेम और सद्भाव से पूजा करनी चाहिये। वह भाग्यवाद में अविश्वास करता था। नैतिक एवं सद्प्रयत्नों से व्यक्ति अपने भाग्य को सुधार सकता है।

आर्थिक जीवन

कृषि –

भारत की तरह चीनियों के आर्थिक जीवन का आधार कृषि ही बनी रही। चीनी लोग काफी पूजा पाठ के बाद फसलें बोते थे, क्योंकि उन्हें हमेशा अनावृष्टि व बाढ़ का डर रहता था, जिससे कृषि को भारी क्षति पहुँचती थी। मुख्य फसलों में बाजरा, गेहूँ, चावल, चाय, साग–सब्जियाँ तथा फल थे। सोयाबीन की खेती भी लोकप्रिय थी। व्यापारिक फसलें जैसे कपड़े बनाने के लिए भी खेती की जाती थी। एक प्रकार का पौधा सन (जूट) था जिसके रेशों से कपड़ा बनाया करते थे। शहतूत की खेती प्रचलित थी, इसके पत्तो पर रेशम के कीड़े पाले जाते थे। खोदने वाले खुरपे का स्थान हल ने ले लिया था और बाढ़ों को नियंत्रित करने और सिंचाई की व्यवस्था सुधारने के लिए प्रयत्न किये गए। बाढ़ के बाद आई मिट्टी को हटाना और नहरें खोदना भी सरकार के ही कार्य थे। सरकार के प्रयासों, उपजाऊ भूमि तथा सिंचाई की उत्तम व्यवस्था के परिणामस्वरूप चीनी किसान एक साल में दो–तीन फसलें पैदा कर लेते थे।

चीनी लोग पशुपालन का भी कार्य करते थे। पालतू जानवरों में गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड, कुत्ते, सुअर, हिरण आदि मुख्य थे।

उद्योग व व्यापार –

चीनी लोग मुख्य रूप से सूत कातना, कपड़े बुनना, मिट्टी के बर्तन एवं मूर्तियाँ बनाना, धातुओं के अस्त्र–शस्त्र, आभूषण, मूर्तियाँ तथा खिलौने बनाना एवं रेशम के कपड़े के लिए प्रसिद्ध थे। सर्वप्रथम रेशम के आविष्कार का श्रेय भी चीन को ही दिया जाता है। मृद्भाण्ड बनाने का काम भी विकसित होकर चीन की एक विशिष्ट कला बन गया। वज्रमणि को उत्कीर्ण करना भी चीनियों की विशेषता थी। चीनी लोग वज्रमणि को संगीत पत्थर कहते थे क्योंकि जब इनको ठीक प्रकार से गढ़ लिया जाता था तथा इन पर चोट लगाई जाती थी तो इसमें से संगीत जैसा मधुर स्वर निकलता था।

चीनी लोगों का एक अन्य प्रसिद्ध उद्योग कागज बनाना था। कागज का आविष्कार भी चीन ने ही किया था। वे लोग चिथड़े, वृक्ष की छाल, पटुआ तथा रेशम के छोटे–छोटे टुकड़ो से कागज बनाते थे। चीनी लोग दर्पण बनाने में भी दक्ष थे। कांसे के दर्पणों में रेखा गणितिय आकृतियाँ बनाई जाती थी जो दर्पण कला की उत्तम कृतियाँ हैं।

जब चीन का शेष दुनिया से सम्पर्क हुआ तब चीन के व्यापार में उन्नति हुई। चीनी नगर व्यापार के केन्द्र थे। व्यापार जल तथा थल दोनो मार्गों से होता था। चीन की दीवार को पार करके दो मुख्य सड़कों का निर्माण पश्चिमी देशों से व्यापार के लिए किया गया। चीनी लोगों का पूर्वी द्वीप समूह, लंका, भारत, फारस, रोम, मध्य एशिया तथा मंगोलिया के साथ व्यापार होता था। चीनी लोग लोहे की वस्तुएँ, रेशम, मिट्टी के बर्तन तथा अन्य दस्तकारी वस्तुएँ निर्यात करते थे तथा सोना–चाँदी तथा हाथी दाँत, अफीम, सूत आदि आयात करते थे।

प्रारम्भ में व्यापारिक लेन–देन वस्तु विनिमय पर आधारित था परन्तु बाद में सिक्कों का प्रयोग भुरु हो गया था।

भाषा तथा साहित्य –

चीनी शासकों ने लिपि का मानकीकरण किया। उन्होने 3300 चिह्न स्वीकार किए तथा राजनीतिक संगठन होने के बाद देश के प्रत्येक भाग में यह लिपि प्रसिद्ध हो गई। चीनी लिपि पूरे देश में एक थी लेकिन बोलियों में बहुत अन्तर था। चीनी लिपि ने पूरे चीन में एकता लाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। जापान, कोरिया, वियतनाम की लिपियाँ भी चीन की लिपि से प्रभावित हुई।

पहली शती ई. में कागज का आविष्कार हुआ और इससे लेखन कला में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। चीनी लिपि तथा भाषा के विकास और कागज के आविष्कार होने पर चीन में उच्च कोटि के साहित्य की रचना हुई और उसे भविष्य के लिए सुरक्षित रखना सम्भव हो गया। प्राचीन साहित्य के अतिरिक्त चीनी दार्शनिकों ने जन साधारण की भाषा में, गद्य में अपने

विचार व्यक्त किये।

इतिहास लिखने की प्रथा का प्रचलन प्राचीन काल से था। कहा जाता है कि कनफ्यूशियस ने इतिवृत्त लिखे जिसमें लू राज्य का 722 से 481 ई. पू. तक का इतिहास है। चीन में राजवंशों का इतिहास लिखने की प्रथा बहुत बलवती हो गई। इस समय 26 राजवंशो के इतिहास उपलब्ध हैं। इस प्रकार का सबसे पहला इतिहास स्सु–मा च्येन ने लिखा था। उनको चीन के प्रथम इतिहासकार के रूप में आदर दिया जाता है।

विज्ञान और तकनीक –

चीन बारूद, कुतबनुमा, रेशम, कागज, छापेखाने के लिए विश्व प्रसिद्ध है। पनचक्की तथा जलघड़ी का आविष्कार भी चीनियों ने ही किया था। अभियांत्रिकी के क्षेत्र में उन्होंने नहरें बनाई जो 100–100 मील से भी लम्बी थी। उन्होंने तारों तथा नक्षत्रों के समूहों की सूचियाँ बनाई जिससे वे ग्रहणों की तिथियाँ निर्धारित कर सकते थे। जलघड़ी के आविष्कार से चीनियों ने ऋतुओं का ज्ञान प्राप्त कर बाढ़ों से निपटने का प्रयास किया।

गणित में चीनी लोग दशमलव का प्रयोग जानते थे परन्तु उन्हें शून्य का ज्ञान नहीं था। चीनियो ने भूकम्प विज्ञान का भी विकास किया। उन्होंने भूकम्प–लेखी यंत्र का आविष्कार कर लिया था। इस यंत्र द्वारा वे भूकम्प के प्रारम्भ स्थान का पता लगा लेते थे।

पतंग का आविष्कार भी चीन की ही देन है। पंतग के अतिरिक्त छतरियों का आविष्कार भी चीन ने ही किया।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रथम सभ्यता उत्तर–पश्चिम क्षेत्रों में विकसित हुई यह सभ्यता सिन्धु तथा सरस्वती नदी के किनारे विकसित हुई अतः इसे सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के नाम से जाना जाता है। भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में सरस्वती नदी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी के तट पर वेदों की रचना हुई है। वेदों तथा वैदिक साहित्य, महाकाव्यों, पुराणों आदि में इसका व्यापक विवरण प्राप्त होता है। सरस्वती नदी को सिन्धु नदी सहित छः नदियों की माता माना है। अतः सरस्वती नदी सिन्धु नदी से भी प्राचीन है। अतः सरस्वती नदी सभ्यता, सिन्धु घाटी से पूर्व की एक सुसंस्कृत, सुव्यवस्थित सभ्यता थी। वास्तव में वैदिक संस्कृति का जन्म और विकास इसी नदी के तट पर हुआ था। यह अब स्पष्ट हो गया कि सरस्वती नदी शिवालिक पहाड़ियों से निकल कर आदि बद्री में पहुँचती है। वहाँ से हरियाणा, राजस्थान होती हुई कच्छ की खाड़ी में गिरती थी। इसके लुप्त होने के बारे में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

भौगोलिक विस्तार –

1921 में दयाराम साहनी तथा 1922 में राखलदास बनर्जी द्वारा हडप्पा तथा मोहनजोदडो में किए गए उत्खननों से सिन्धु–सरस्वती सभ्यता का अनावरण हुआ।

वर्तमान में इस सभ्यता के पुरास्थल हमें पाकिस्तान में सिन्ध, पंजाब एवं बलूचिस्तान प्रान्तों से तथा भारत में जम्मू–कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात तथा महाराष्ट्र प्रान्तों से मिले हैं।

इन सभी प्रान्तों से प्राप्त पुरास्थलों की सूची निम्नलिखित है –

बलूचिस्तान (पाकिस्तान)	–	सुत्कागेण्डोर, सुत्काकोह बालाकोट
पंजाब (पाकिस्तान)	–	हडप्पा, जलीलपुर, रहमान ढेरी, सराय खोला, गनेरीवाल
सिंध (पाकिस्तान)	–	मोहनजोदडो, चन्हुदड़ो, कोटदीजी, जुदीरजोदडो
पंजाब (भारत)	–	रोपड, कोटला निहंगखान, संघोल
हरियाणा (भारत)	–	बणावली, मीताथल, राखीगढी
जम्मू–कश्मीर (भारत)	–	माण्डा (जम्मू)
राजस्थान (भारत)	–	कालीबंगा

उत्तर प्रदेश (भारत)	–	आलमगीरपुर (मेरठ) हुलास (सहारनपुर)
गुजरात (भारत)	–	रंगपुर, लोथल, प्रभासपाटन, रोजदी, देशलपुर, सुरकोटडा, मालवण, भगतराव, धौलावीरा
महाराष्ट्र (भारत)	–	दैमाबाद (अहमदनगर)

नवीन परिगणना के हिसाब से सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के लगभग 1400 स्थल हमें ज्ञात हैं। जिनमें 917 भारत में 481 पाकिस्तान में तथा शेष 2 स्थल अफगानिस्तान (शोर्तुगोई मुड़ीगाक) में हैं।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के विस्तार की उत्तरी सीमा जम्मू क्षेत्र में चेनाब नदी के किनारे स्थित माण्डा पुरास्थल है। इसकी दक्षिणी सीमा महाराष्ट्र के दैमाबाद (अहमदनगर) नामक स्थल पर है। यमुना नदी की सहायक हिण्डन नदी के तट पर स्थित आलमगीरपुर सबसे पूर्वी पुरास्थल है तथा सबसे पश्चिमी पुरास्थल बलूचिस्तान में मकरान तट पर स्थित सुत्कागेण्डोर है। अर्थात् सिन्धु सभ्यता पश्चिम से पूर्व तक 1600 कि.मी. तथा उत्तर से दक्षिण तक 1400 कि.मी. में फैली हुई थी। सिन्धु सभ्यता का वर्तमान में प्राप्त भौगोलिक विस्तार लगभग 15 लाख वर्ग किमी. है।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता का कालक्रम –

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के कालक्रम को लेकर विद्वान एक मत नहीं है।

अर्नेस्ट मैके ने मोहनजोदडो के अन्तिम चरण को 2500 ई.पू. में निर्धारित करते हुए प्रारम्भ 2800 ई.पू. माना है। मार्टीमर व्हीलर ने इस सभ्यता की तिथि 2500 ई.पू. से 1500 ई. पू. के मध्य मानी है। रेडियो–कार्बन पद्धति से इस सभ्यता की तिथि 2300–1750 ई.पू. मानी गई हैं। लेकिन नवीन उत्खननों तथा अनुसंधानो से सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के नवीन तथ्य प्रकाश में आये हैं। इन नवीन उत्खननों से पता चलता हैं कि यह सभ्यता 5000 ई. पू. से 3000 ई. पू. के मध्य की हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता हैं कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यता थी।

नगर नियोजन तथा स्थापत्य –

सुनियोजित नगरों का निर्माण सिन्धु–सरस्वती सभ्यता की एक अनूठी विशेषता है। प्रत्येक नगर के पश्चिम में ईटों से बने एक चबूतरे पर 'गढी' या दुर्ग का भाग है और इसके पूर्व की ओर अपेक्षाकृत नीचे धरातल पर नगर भाग प्राप्त होता है जो जन सामान्य द्वारा निवासित होता था। गढ़ी वाला भाग शायद पुरोहितों अथवा शासक का निवास स्थान होता था। गढी के चारों ओर परकोटे जैसी दीवार थी।

नगरों की सड़कें सीधी तथा एक दूसरे को समकोण पर काटती हुई दिखती हैं। जिससे सम्पूर्ण नगर वर्गाकार या आयताकार खण्डों में विभक्त हो जाता है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता कालीन सड़कें पर्याप्त चौड़ी होती थीं, इनकी चौड़ाई 9 फीट से 34 फीट तक मिलती है और कभी–कभी ये सड़कें आधे मील की लम्बाई तक मिली हैं।

भवन विभिन्न आकार–प्रकार के हैं जिनकी पहचान धनाढ्यों के विशाल भवन, सामान्य जनों के साधारण घर, दुकानें, सार्वजनिक भवन आदि के रूप में की जा सकती है। साधारणतया घर पर्याप्त बड़े थे और उनके मध्य में आँगन होता था। आँगन के एक कोने में ही भोजन बनाने का प्रबन्ध था। और इर्द–गिर्द चार या पाँच कमरे बने होते थे। प्रत्येक घर में स्नानागार और पानी की निकासी के लिए नालियों का प्रबन्ध था और घरों में कुएँ भी थे। यह उल्लेखनीय है कि सिन्धु –सरस्वती सभ्यता के लोग सार्वजनिक मार्गों पर अतिक्रमण नहीं करते थे।

गलियाँ 1 से 2.2 मीटर तक चौड़ी थी। ये गलियाँ सीधी होती थी। मोहनजोदडो की हर गली में एक सार्वजनिक कूप मिलता है। कालीबंगा में गलियों एवं सड़कों को एक आनुपातिक ढंग से निर्मित किया गया था। गलियाँ वहाँ 1.8 मी. चौडी और मुख्य सड़कें एवं राजमार्ग इससे दुगुने (3.6 मी.) तिगुने (5.4 मी.) या चौगुने (7.2 मी.) चौड़े थे।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के भवनों में पकाई गई ईटों का इस्तेमाल होना एक अद्भुत बात है। जिस समय अन्य सभ्यताएँ पक्की ईंटों से अनभिज्ञ थी उस समय सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के लोग बड़ी कुशलता से उनका प्रयोग कर रहे थे।

निर्माण में प्रयुक्त ईंटों का अनुपात 4 : 2 : 1 था।

जल निकास प्रणाली –

जल प्रबन्धन एवं जल निकास व्यवस्था सिन्धु–सरस्वती व्यवस्था की प्रमुख विशेषता थी। लगभग प्रत्येक बड़े घर में कुएँ की व्यवस्था थी। सार्वजनिक उपयोग हेतु भी कुछ कुए गलियों के किनारे खुदाये गये थे। जल उपलब्धि के साथ ही जल निकासी हेतु भी व्यवस्थित प्रणाली थी। प्रायः प्रत्येक घर के किनारे वर्षा एवं घर के अनुपयुक्त पानी की निकासी हेतु नालियाँ थी। प्रत्येक घर की नाली गली की प्रमुख नालियों से होकर मुख्य सड़क की नालियों में गिरती थी। पक्की ईंटों से निर्मित नालियाँ अधिकांशतः ढकी हुई होती थी। नालियों के बीच–बीच में थोड़ी दूरी पर गड्ढे बनाये जाते थे जिनमें अवरोधक कूड़ा–कचरा गिर जाता था। और जल निकास के बहाव में रूकावट नहीं होती थी। इन गड्ढों के ढक्कन हटाकर सफाई की जाती थी। ऊपरी मंजिलों का पानी पक्की ईंटों से बने पटावनुमा नाली से नीचे गिरता था। कालीबंगा में लकड़ी के खोखले तनों का उपयोग नालियों के रुप में किया जाता था। कहीं पर भी पानी का जमाव या गंदा पानी भरा नहीं रहता था। सिन्धु –सरस्वती सभ्यता नगरीय स्वच्छता का श्रेष्ठतम प्रतीक है। ऐसी नाली व्यवस्था विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होती। यहाँ तक कि 18वीं शताब्दी के श्रेष्ठतम मान्य शहर पेरिस में भी ऐसी जल निकासी व्यवस्था नहीं थी।

विशिष्ट भवनों का स्थापत्य

विशाल स्नानागार –

यह मोहनजोदडो में स्थित सबसे महत्वपूर्ण व भव्य निर्माण का नमूना है। यह स्नानागार 39 फीट लम्बा, 23 फीट चौड़ा और 8 फीट गहरा है। इस कुण्ड में जाने के लिए दक्षिण और उत्तर की ओर की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसमें ईंटों की चिनाई बड़ी सावधानी एवं कुशलता के साथ की गई है। स्नान कुण्ड की फर्श का ढाल दक्षिण–पश्चिम की ओर है। स्नानागार के दक्षिणी–पश्चिमी कोने में ही एक महत्वपूर्ण नाली थी जिसके द्वारा पानी निकास की व्यवस्था थी। इस स्नानागार का उपयोग धार्मिक उत्सवों तथा समारोहो पर होता होगा।

विशाल अन्नागार –

हडप्पा के गढी वाले क्षेत्र में एक विशाल अन्नागार के अवशेष मिले हैं। यह ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ था जिसके पीछे बाढ़ से बचाव तथा सीलन से बचाने का उद्देश्य दिखाई पड़ता है। यह अन्नागार या भण्डारागार कई खण्डों में विभक्त था और हवा आने जाने की पर्याप्त व्यवस्था थी। यह अन्नागार राजकीय था। हडप्पा के अतिरिक्त हमें मोहनजोदडो एवं राखीगढ़ी से भी अन्नागारों के अवशेष मिले हैं।

गोदी या बंदरगाह (लोथल) –

लोथल में पक्की ईंटों का एक गोदी या बंदरगाह (डॉकयार्ड) मिला है। जिसका औसत आकार 214.36 मीटर है। इसकी वर्तमान गहराई 3.3 मीटर है। अनुमानतः इसकी उत्तरी दीवार में 12 मीटर चौड़ा प्रवेश द्वार था जिसमें से जहाज आते जाते थे। लोथल का डॉकयार्ड वर्तमान में विशाखापट्टनम् में बने हुए डॉकयार्ड से बड़ा है।

इनके अतिरिक्त धौलावीरा का जलाशय तथा विशाल स्टेडियम भी विश्व की प्राचीन सभ्यताओं से प्राप्त नमूनों में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

सामाजिक जीवन

वर्गीकरण –

समाज में कई वर्ग थे। यहाँ सुनार, कुम्भकार, बढई, दस्तकार, जुलाहे, ईंटें तथा मनके बनाने वाले पेशेवर लोग थे। कुछ विद्वानों के अनुसार उस काल में पुरोहितों तथा अधिकारियों व राजकर्मचारियों का एक विशिष्ट वर्ग रहा होगा। सम्पन्नता की दृष्टि से गढी वाले क्षेत्र के लोग सम्पन्न रहे होंगे तथा निचले नगर में सामान्य लोग रहते होंगे।

परिवार तथा स्त्रियों की स्थिति –

खुदाई में मिले भवनों से साफ पता लगता है कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता काल में पृथक्–पृथक् परिवारों के रहने की योजना दिखाई देती है। अतः इस काल में एकल परिवार योजना रही होगी। इस सभ्यता में भारी संख्या में नारियो की मूर्तिया मिली हैं। संभवतः यहाँ नारियों का स्थान सम्मानजनक

था। क्रीट तथा अन्य भूमध्य सागरीय सभ्यताओं में मातृसत्तात्मक समाज पाया जाता था। अतः इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में भी मातृसत्तात्मक परिवारों का प्रचलन रहा होगा। ऐसी स्थिति में स्त्रियों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा।

खान–पान –

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के वासी अपने भोजन में गेहूँ, जौ, चावल, दूध, फल, माँस आदि का सेवन करते थे। फलो में वे अनार, नारियल, नींबू, खरबूजा, तरबूज आदि से परिचित थे। पशु पक्षियों की कटी–फटी हड्डियों के मिलने से उनके मांसाहार का पता चलता है। भेड, बकरी, सुअर, मुर्गा, बतख, कछुआ आदि का मांस खाया जाता था। अनाज तथा मसाले पीसने के लिए सिल–बट्टे का प्रयोग किया जाता था।

रहन–सहन, आमोद–प्रमोद –

स्त्रियों की मृणमूर्तियों से उनकी वेशभूषा की जानकारी मिलती है। इन मूर्तियों में उनके शरीर का ऊपरी भाग वस्त्रहीन है तथा कमर के नीचे घाघरे जैसा एक वस्त्र पहना हुआ है। कुछ मूर्तियों में स्त्रियों को सिर के ऊपर एक विशेष प्रकार के पंखे की आकृति का परिधान पहने हुए दिखाया गया है। पुरूषों की अधिकांश आकृतियाँ बिना वस्त्रों के हैं। हालांकि पुरूष कमर पर एक वस्त्र बाँधते थे। कुछ स्थानों पर पुरूषों को शाल ओढे हुए दिखाया गया है।

पुरूषों में कुछ लोग दाढ़ी–मूँछ रखते थे तथा हजामत करते थे। स्त्रियाँ अपने केशों का विशेष ध्यान रखती थी। बालों को संवारने के लिए कंघियों का और मुख छवि देखने के लिए दर्पण का प्रयोग किया जाता था। खुदाई में कांसे में बने हुए दर्पण एवं हाथीदांत की कंघियाँ प्राप्त हुई हैं। स्त्री–पुरूष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। मुख्य रूप से मस्तकाभूषण, कण्ठहार, कुण्डल, अगूंठियाँ, चूडियाँ, कटिबन्ध, पाजेब आदि पहने जाते थे।

सिन्धु सरस्वती सभ्यता के क्षेत्र की खुदाई में मिट्टी के कई खिलौने मिले हैं। इसके अतिरिक्त पासे भी मिले हैं जिससे पासों के खेलों जैसे चौसर का प्रमाण मिलता है। नर्तकी की प्राप्त मूर्ति से नृत्य संगीत का पता लगता है। कुछ मुहरों पर सारंगी और वीणा का भी अंकन है।

आर्थिक जीवन –

कृषि –

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के पर्याप्त जनसंख्या वाले महानगरों का उदय एक अत्यन्त उपजाऊ प्रदेश की पृष्ठभूमि में ही सम्भव था। अधिकांश नगर सुनिश्चित सिंचाई की सुविधा से युक्त उपजाऊ नदी के तटों पर स्थित थे। जलवायु की अनुकूलता, भूमि की उर्वरता एवं सिंचाई की सुविधाओं के अनुरूप विभिन्न स्थलों पर फसलें उगाई जाती थी।

गेहूँ के उत्पादन के पर्याप्त प्रमाण मिले हैं। हड़प्पा और मोहनजोदडो से जौ के भी प्रमाण मिले हैं। ऐसा जान पड़ता है कि गेहूँ और जौ इस सभ्यता के मुख्य खाद्यान्न थे। इसके अतिरिक्त खजूर, सरसों, तिल, मटर तथा राई और चावल से भी परिचित थे। कपास की खेती होती थी और वस्त्र निर्माण एक महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा होगा। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में ही कपास की खेती का विश्व को पहला उदाहरण मिला है। सिन्धु क्षेत्र में उपज होने के कारण यूनानियो ने कपास के लिए "सिन्डन" शब्द का प्रयोग किया। यहाँ की उर्वरता का मुख्य कारण सिन्धु तथा सरस्वती नदियों में आने वाली बाढ़ थी जो कि काफी जलोढ मिट्टी लाकर मैदानों में छोड़ देती थी। सम्भवतः खेतों को जोतने के लिए हलों का प्रयोग होता था। कालीबंगा में जुते हुऐ खेत का प्रमाण मिला है।

पशुपालन –

गाय, बैल, भैंस, भेड़ पाले जाने वाले प्रमुख पशु थे। बकरी तथा सुअर भी पाले जाते थे। कुत्ते, बिल्ली तथा अन्य पशु भी पाले जाते होंगे। हाथी और ऊँट की हड्डियाँ बहुत कम मिली हैं लेकिन मुहरों पर इनका अंकन विपुल है। सिन्धु सभ्यता के निवासी घोड़े से भी परिचित थे। लोथल से घोड़े की तीन मृण मूर्तियाँ तथा एक जबड़ा मिला है, जो घोड़े का है।

उद्योग तथा शिल्प –

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता कांस्ययुगीन सभ्यता है। ताँबे के साथ टिन को मिलाकर कांसा बनाया जाता था। ताम्र और कांस्य के सुन्दर बरतन हड़प्पा कालीन धातु कला के श्रेष्ठ

उदाहरण हैं।

तॉँबे से निर्मित औजारों में उस्तरे, छैनी हथौड़ी, कुल्हाडी, चाकू, तलवार आदि मिली है। कांस्य की वस्तुओं के उदाहरण में नर्तकी की मूर्ति मुख्य है। सिन्धु सभ्यता में सोने तथा चाँदी का भी प्रयोग होता था तथा यहाँ के लोग मिट्टी के बरतन बनाने की कला में भी प्रवीण थे। मनकों का निर्माण एक विकसित उद्योग था। चन्हुदड़ो तथा लोथल में मनका बनाने वालों की पूरी कर्मशाला मिली है। मनके सोने–चाँदी, सेलखडी, सीप तथा मिट्टी से बनाये जाते थे।

लोथल तथा बालाकोट से विकसित सीप उद्योग के प्रमाण मिले हैं। सूत की कताई और सूती वस्त्रों की बुनाई के धन्धे भी अत्यन्त विकसित रहे होंगे।

व्यापार एवं वाणिज्य –

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार अत्यन्त विकसित अवस्था में था। उद्योग–धन्धों के लिए कच्चा माल राजस्थान, गुजरात, सिन्ध, दक्षिण भारत, अफगानिस्तान, ईरान तथा मेसोपोटामिया से मँगाया जाता था। राजस्थान से ताँबा तथा सोना मैसूर से आता था।

यहाँ के लोगों के मेसोपोटामिया से व्यापारिक सम्बन्ध होने के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। मेसोपोटामिया से सिन्धु सरस्वती सभ्यता की कई दर्जन मुहरें मिली हैं। मेसोपोटामिया के एक अभिलेख में दिलमन, मगान और मेलुहा नामक स्थानों की चर्चा की गई है। जिनके साथ वहाँ के लोगो के व्यापारिक सम्बन्ध थे। मेलुहा शब्द भारत के लिए प्रयुक्त किया गया माना जाता है।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में व्यापार के लिए वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रयोग किया जाता था। यहाँ से भारी संख्या में मुहरें मिली है लेकिन उनका उपयोग पत्र या पार्सल पर छाप लगाने के लिए किया जाता था। माप–तौल का एक निश्चित क्रम था। तोल की ईकाई 16 के अनुपात में थी जैसे – 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64, 160, 320 सोलह के अनुपात में तौल मापने की परम्परा हमारे यहाँ आधुनिक काल तक चलती आ रही है।

धार्मिक जीवन –

सिन्धु सरस्वती सभ्यता का प्राचीन धर्म के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान स्वीकार किया जाता है। मातृदेवी की उपासना, पशुपति शिव की परिकल्पना, मूर्तिपूजा, वृक्षपूजा, अग्निपूजा, जल की पवित्रता, तप एवं योग की परम्परा उनके धर्म की ऐसी विशेषताएँ है जिनकी निरन्तरता हमारे वर्तमान धार्मिक जीवन में देखी जा सकती है। बणावली से प्राप्त एक अर्द्धवृत्ताकार ढ़ाँचे के सम्बन्ध में कुछ विद्धानों ने मंदिर होने की संभावना व्यक्त की है।

मातृदेवी की उपासना –

हड़प्पा, मोहनजोदडो एवं चुन्हदडो से विपुल मात्रा में मिट्टी की बनी हुई नारी–मूर्तियाँ मिली हैं, जिन्हें पूजा के लिए निर्मित मातृदेवी की मूर्तियाँ माना गया है। भारत में देवी पूजा या शक्ति पूजा की प्राचीनता का प्रारम्भिक बिन्दु सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में देखा जा सकता है।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता से प्राप्त मुहरों के कुछ चित्रों से भी मातृदेवी की उपासना के संकेत मिलते हैं। राखीगढ़ी में हमें बहुत से अग्निकुण्ड एवं अग्नि वेदिकायें (संभवतः यज्ञवेदियाँ) मिली हैं। इन क्षेत्रों में धार्मिक यज्ञों या अग्निपूजा का प्रचलन रहा होगा।

पुरूष देवता (शिव) की उपासना –

जॉन मार्शल ने मोहनजोदडो की एक मुहर पर अंकित देवता को ऐतिहासिक काल के पशुपति शिव का प्राक् रूप माना है। इस मुहर में देवता को त्रिमुख एवं पद्मासन मुद्रा में बैठे हुए दिखाया गया है। दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर केन्द्रित लगती है, इसके चारों ओर एक हाथी, एक चीता, एक भैंसा तथा एक गैंडा एवं आसन के नीचे हरिण अंकित है। इस अंकन में शिव के तीन रूप देखे जा सकते हैं। जो निम्न है – (1) शिव का त्रिमुख रूप (2) पशुपति रूप (3) योगेश्वर रूप

अग्निवेदिकाएँ –

कालीबंगा, लोथल, बणावली एवं राखीगढ़ी के उत्खननों से हमें अनेक अग्निवेदिकाएँ मिली हैं। कुछ स्थलों पर उनके साथ ऐसे प्रमाण भी मिले हैं जिनसे उनके धार्मिक

प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने की संभावना प्रतीत होती है। बणावली एवं राखीगढ़ी से वृत्ताकार अग्निवेदिकाएँ मिली हैं, जिन्हें अर्द्धवृत्ताकार ढाँचे के मन्दिर या घेरे में संयोजित किया गया है।

पशु पूजा, वृक्ष पूजा एवं नाग पूजा –

खिलोना

कई मुहरों पर एकश्रृंग वृषभ (एक सींग वाले बैल) का अंकन मिलता हैं, जिसके सामने सम्भवतः धूपदण्ड रखा हुआ है।

अनेक छोटी–छोटी मुहरों पर वृक्षों के चित्रांकन से वृक्ष पूजा का आभास होता है। कई छोटी मुहरों पर एक वृक्ष के चारों ओर छोटी दीवार या वेदिका बनी मिलती है। जो उनकी पवित्रता तथा पूजा–विषय होने की द्योतक है। कुछ मुहरों पर स्वास्तिक, चक्र एवं क्रॉस जैसे मंगलचिन्हों का भी अंकन काफी संख्या में मिलता है।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के अवशेषों से जल की पवित्रता एवं धार्मिक स्नान की परम्परा के संकेत भी मिलते है। यह अनुमान किया जाता है कि मिट्‌टी और ताँबे से बनी कुछ गुटिकाओं का ताबीजों के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। मनके भी जैसे त्रिपत्र–अलंकरण युक्त होते थे जो "ताबीज या रक्षाकवच" के रूप में काम आते होंगे।

योग एवं साधना की परम्परा –

विद्वानों का अनुमान है कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में योग एवं साधना की परम्परा के अस्तित्व का संकेत भी मिलता है। इसके दो साक्ष्य हैं – (1) पशुपति मुहर में पदमासन मुद्रा में बैठे योगेश्वर शिव का अंकन (2) मोहनजोदडो से प्राप्त 'योगी' की मूर्ति जिसकी दृष्टि नासाग्र पर टिकी है।

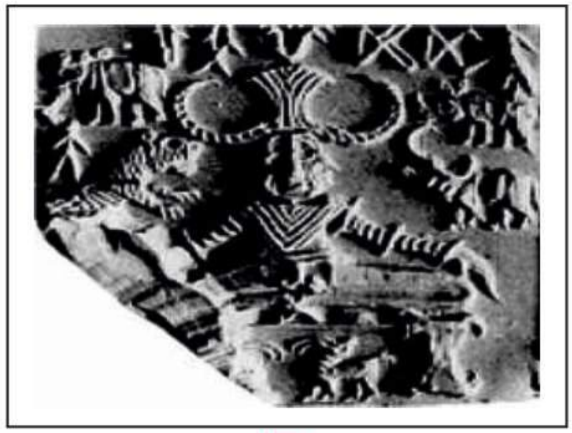

मुहर

मृतक संस्कार एवं पुनर्जन्म में विश्वास –

मार्शल के अनुसार इस सभ्यता के लोग तीन प्रकार से शवों का क्रिया कर्म करते थे – (1) पूर्ण समाधिकरण – इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण शव को जमीन के नीचे गाड़ दिया जाता था। (2) आंशिक समाधिकरण – इसके अन्तर्गत पशु–पक्षियों के खाने के पश्चात् शव के बचे हुए भाग गाड़े जाते थे। (3) दाहकर्म – इसमें शव जला दिया जाता था और कभी–कभी भस्म गाड़ दी जाती थी। शव के साथ कभी–कभी विविध आभूषण, अस्त्र–शस्त्र पात्रादि भी रखे मिलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि वे पुनर्जन्म में भी विश्वास रखते थे।

राजनीतिक व्यवस्था

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता की राजनीतिक व्यवस्था के बारे में हमें कोई स्पष्ट जानकारी नहीं है। व्हीलर और पिगट का मानना है कि हडप्पा एवं मोहनजोदडो में दक्षिणी मेसोपोटामिया की तरह पुरोहित का शासन था। कुछ अन्य विद्वान इस बात से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि इस सभ्यता के नगरों में मिश्र एवं मेसोपोटामिया की तरह कोई मन्दिर नहीं मिला है। सिन्धु सभ्यता के वासियों की मूल रूचियाँ व्यापार मूलक थी, और उनके नगरों में सम्भवतः व्यापारी वर्ग का शासन था।

किंतु नगर–नियोजन, पात्र–परम्परा, उपकरण

निर्माण, बाट एवं माप आदि के संदर्भ में मानकीकरण एवं समरूपता किसी प्रभावी राजसत्ता के पूर्ण एवं कुशल नियन्त्रण के प्रमाण हैं। व्हीलर के अनुसार यह साम्राज्य, जो इतनी दूर तक फैला हुआ था, एक अच्छे प्रकार से शासित साम्राज्य था। इतने बड़े साम्राज्य के चार प्रमुख क्षेत्रीय केन्द्र रहे होंगे – हडप्पा, मोहनजोदडो, कालीबंगा और लोथल। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के निवासियों का जीवन शान्तिप्रिय था। युद्ध के अस्त्र–शस्त्र बहुत अधिक संख्या में नहीं मिलते हैं। उपलब्ध हथियारों में काँसे की आरी, ताँबे की तलवारें, कांस्य के बने भालों के अग्रभाग, कटारें, चाकू, नोकदार बाणाग्र आदि मिलते हैं।

कला

सिन्धु सरस्वती सभ्यता की मुहरें, मूर्तियाँ, मृद्भाण्ड, मनके एवं धातु से बनी कतिपय वस्तुयें कलात्मक उत्कृष्टता एवं समृद्धि की परिचायक हैं।

मूर्तिकला –

मोहनजोदडो से प्राप्त उल्लेखनीय पत्थर की एक खंडित मानव–मूर्ति जिसका सिर से वक्षस्थल तक का ही भाग बचा है, उल्लेखनीय है। यह मूर्ति त्रिफूलिया आकृति से युक्त शाल ओढे हुए है। हडप्पा के उत्खननों से पत्थर की दो मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। कला के क्षेत्र में शैली और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से ये काफी हद तक यूनानी कलाकृतियों के समकक्ष रखी जा सकती हैं। इनमें से एक लाल बलुआ पत्थर का धड़ है। यह एक युवा पुरूष का धड़ है और इसकी रचना में कलाकार ने मानव शरीर के विभिन्न अंगों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण दिया है। दूसरी सलेटी चूना पत्थर की नृत्यमुद्रा में बनाई गई आकृति का धड़ है। इसमें शरीर के विभिन्न अंगों का विन्यास आकर्षक है। यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि यह नृत्यरत नटराज की मूर्ति है। कांस्य मूर्तियों में सर्वाधिक कलात्मक नर्तकी की मूर्ति है। यह मूर्ति 14 सेमी ऊँची है। इस मूर्ति में नारी के अंगों का न्यास सुन्दर रूप से हुआ है। इस मूर्ति का निर्माण द्रवीय मोम विधि से हुआ है।

कांस्य मूर्तियों में दैमाबाद से प्राप्त एक रथ की मूर्ति अत्यन्त आकर्षक है। एम. के. धवलिकर के शब्दों में ''दैमाबाद से प्राप्त उपर्युक्त चारों कांस्य–मूर्तियाँ 'भारतीय प्रागैतिहासिक कला के सम्पूर्ण क्षेत्र में अपनी श्रेणी के श्रेष्ठतम शिल्प है।''

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में मिट्टी की मूर्तियाँ सर्वाधिक संख्या में मिली हैं। मिट्टी की सर्वत्र सुलभता आकृतियों के निर्माण में धातु एवं पत्थर से अधिक आसानी और कम खर्च के कारण प्रायः सभी प्राचीन संस्कृतियों में मृण्मूर्ति कला लोकप्रिय रही। पाषाण–मूर्तियाँ बहुत कम संख्या में मिली हैं। सिन्धु सभ्यता के विविध क्षेत्रों से उपलब्ध मृण्मूर्तियों के विशाल भण्डार में पशुओं और पक्षियों की मूर्तियाँ अधिक संख्या में मिली हैं।

मुहरें –

मुहरें इस सभ्यता की सर्वोत्तम कलाकृतियाँ हैं। अधिकांश मुहरों पर किसी न किसी पशु की आकृति एवं सिन्धु लिपि में लेख, जो साधारणतया 3 से 8 अक्षर वाले हैं। अधिकांश मुहरें सेलखडी से निर्मित हैं। ये प्रायः इस सभ्यता के नगर स्थलों से ही मिली हैं। यद्यपि इन मुहरों के निर्माण में एक जैसी सावधानी और कलात्मकता नहीं दिखती, तथापि मुहरों के कुछ सुन्दर उदाहरण विश्व की महान कलाकृतियों में अपना स्थान रखते हैं। मुहरों पर अंकित पशु आकृतियों में सबसे अधिक अंकन कूबड़–विहीन बैल का मिलता है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में दो मुहरें विशेष उल्लेखनीय हैं। सबसे प्रसिद्ध 'पशुपति मुहर' जिसमें एक चौकी या पीठ पर आसीन 'शिव' एक हाथी, चीता, गैंडा और भैंसें से घिरे हैं। दूसरी मुहर पर एक कूबड़दार बैल का अंकन है जो मोहनजोदडो से मिली है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के विविध क्षेत्रों से उपलब्ध मृण मूर्तियों के विशाल भंडार में पशुओं की मूर्तियाँ अधिक संख्या में मिली हैं।

लिपि –

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता की लिपि अभी भी विद्वानों के लिए एक अबूझ रहस्य है। अभी तक इस लिपि को पढ़ने के बारे में 100 से अधिक दावे प्रस्तुत किये जा चुके हैं, लेकिन उन सब की विश्वसनीयता संदिग्ध है। इस सभ्यता में 2500 से अधिक अभिलेख उपलब्ध हैं। सबसे लम्बे अभिलेख में 17 अक्षर हैं। ये प्रायः मुहरों पर मिलते हैं। अभी तक इस लिपि में लगभग 419

चित्रों की पहचान की जा चुकी है। कालीबंगा के एक अभिलेख के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि यह लिपि दाहिनी ओर से बांयी ओर लिखी जाती थी।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता का निरन्तर सांस्कृतिक प्रवाह

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता अपने समय की समृद्ध तथा अनूठी सभ्यता थी। यहाँ के बचे खण्डहर विगत घटना चक्र के मूक लेकिन प्रखर वाचक हैं। यह सभ्यता आज भले ही नष्ट हो गई हो लेकिन उसकी संस्कृति के अनेक तत्वों का अविरल तरंग–प्रवाह हमारी संस्कृति में आज भी विद्यमान है। इस सभ्यता की स्थापत्य कला आज आधुनिक भारत के कई भवनों में दिखाई देती है। वहाँ के नगर–नियोजन से प्रेरित कई नगर भारत में विद्यमान हैं। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के निवासियों की आभूषण प्रियता और श्रृंगार के प्रति जागरूकता हमारे सामाजिक जीवन में आज भी देखी जा सकती है। कृषि तथा पशुपालन में सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के वासियों ने अनेक नवीन प्रयोग किये जो बाद में भारतीय अर्थव्यवस्था के अंग बन गये। सिन्धु– सरस्वती सभ्यता का धार्मिक प्रवाह भारतीय संस्कृति में जीवंत रूप में दिखाई देता है। शिव, शक्ति तथा प्रकृति–पूजा सिन्धु–सरस्वती सभ्यता की ही देन है। योग भी इसी सभ्यता की देन है।

यूनान की सभ्यता

यूनान के प्रारम्भिक निवासी –

यूनान के निवासी कबीलों में रहते थे। प्रत्येक कबीले में अनेक परिवार होते थे तथा उनका एक नेता होता था। कई कबीलों का स्वामी राजा होता था। प्राचीन यूनानियों के मुख्य व्यवसाय कृषि, पशुपालन, मिट्टी के बर्तन, तलवार और आभूषण बनाना थे। जोखिम के कार्य और युद्ध विजय में ही यूनानी लोग जीवन के सर्वोच्च आनन्द का अनुभव करते थे।

प्राचीन यूनानियों में धार्मिक विश्वास बहुत सरल थे। उनके अनेक देवता थे। यूनानी लोगों ने भारतीयों की तरह अपने देवताओं की मनुष्य के रूप में कल्पना की। 'जियस' आकाश का देवता था। समुद्र का देवता 'ओसीदन' था। 'अपोलो' सूर्य देवता था एवं वह भविष्यवाणी कर सकता था। 'एथीना' विजय की देवी थी। वह भारत की सरस्वती देवी के समान ही कलाओ का संरक्षण करती थी। यूनानियों का विश्वास था कि देवता लोग ओलिम्पस पर्वत पर रहते हैं। यह पर्वत यूनान के उत्तरी भाग में स्थित है। यहाँ के लोग स्वर्ग या नरक अथवा पाप–पुण्य के लिए देवताओं की पूजा नहीं करते थे अपितु अच्छी फसल का लाभ उठाने और अपने सभी कार्यों में सफलता पाने के लिए देवताओं को प्रसन्न करते थे। यूनानी समाज में पुरोहित नहीं होते थे। यज्ञ आदि परिवार का स्वामी करता था।

300 ई. पू. तक यूनानी लोग लिखना नहीं जानते थे। जब लिपि का विकास हो गया तब पूर्वजों की सुरक्षित कहानियों को लेखबद्ध किया गया। होमर नामक कवि ने दो प्रसिद्ध महाकाव्य (इलियड व ओडिसी) लिखे, इससे हमें प्रारम्भिक यूनानियों के जीवन और समाज के विषय में बहुत जानकारी मिलती है। एशिया माइनर के पश्चिमी तट पर ट्रॉय नामक नगर है। इलियड में इस नगर के घेरे और नाश की कहानी का वर्णन है। ओडिसि में ओडिसयस नामक यूनानी वीर के जोखिम पूर्ण कार्यों और उसके ट्रॉय से घर लौटने की कहानी लिखी गई है।

नगर राज्यों का उदय –

800 ई. पू. के लगभग कुछ यूनानी ग्रामों के समूहों ने मिलकर नगर राज्यों का रूप ले लिया। एक नगर राज्य में सबसे ऊँचे स्थान पर एक्रोपोलिस या गढ़ बनाया जाता था जिससे नगर सुरक्षित रह सके। इस गढ़ के चारों ओर नगर बसा होता था। समस्त यूनान और समीप के स्पार्टा, एथेंस, मकदूनिया, कोरिंथ और थीब्स आदि द्वीपों में अनेक नगर स्थापित हुए। इन नगर राज्यों में पहले राजा राज करते थे। कुछ समय पश्चात् जमींदारों ने राजतंत्र को समाप्त कर दिया। जनसंख्या और व्यापार के साथ नगरो में मध्यम वर्ग का विकास हुआ तथा जमींदारों की शक्ति को कम करने के लिए मध्यम और निर्धन वर्ग मिल गया। इनके संघर्ष से राज्य में तानाशाहों का उदय हुआ। जिसे यूनानी लोग ''टायरेंट'' कहते थे। समय के साथ तानाशाही भी समाप्त हो गई और धनिकों द्वारा संचालित अल्पतंत्र की स्थापना हुई। यूनान की मुख्य भूमि पर दो प्रमुख नगर राज्य स्पार्टा और एथेंस थे।

स्पार्टा का राज्य –

स्पार्टा का राज्य यूनान के अन्य राज्यों से भिन्न था। इसका प्रमुख कारण यहाँ की भौगोलिक स्थिति थी। पर्वत श्रेणियाँ इसे अन्य राज्यों से अलग करती थी। स्पार्टा के निवासियों की रूचि सैन्यवाद और युद्धों में थी। इसलिए सात वर्ष की अवस्था से ही बालकों को कठिन सैन्याभ्यास का प्रशिक्षण दिया जाता था। स्पार्टा के बहुत से निवासी दास थे। अधिकतर काम दास ही करते थे, जिससे स्पार्टा के नागरिक अन्य कार्यों की चिन्ता से मुक्त रहें और अपना समय युद्ध और शासन में लगायें। यहाँ के राजा का मुख्य कार्य सेना का नेतृत्व करना होता था। कुलीन व्यक्तियों की एक परिषद और एक सभा शासन कार्य का निरीक्षण करती थी। वही राज कर्मचारियों का चुनाव और शिक्षा की व्यवस्था करती थी।

स्पार्टा के निवासियों की दास प्रथा ने स्वयं स्पार्टा के नागरिको को ही अन्ततः दास बना दिया। दास सदा विद्रोह करते रहे और सेना उनका दमन करती रही। स्पार्टा का कोई भी निवासी अपनी बैरक से बाहर निहत्था नहीं निकलता था। यहाँ के निवासी बचपन से 60 साल की उम्र तक कठोर अनुशासन में रहते थे। अतः उसे शिक्षा प्राप्त करने एवं गृहस्थ जीवन बिताने का अवसर ही नहीं मिलता था।

एथेंस का राज्य –

एथेंस नगर का विकास स्पार्टा के विकास से पूर्णतया भिन्न रूप में हुआ। एथेंस का राज्य जिन प्रदेशों पर था उन पर इस राज्य ने धीरे–धीरे शान्ति पूर्ण तरीके से अधिकार किया इसलिए वहाँ सैन्यवाद का विकास नहीं हुआ। एथेंस के पास बडे अच्छे बन्दरगाह और बहुमूल्य खनिज पदार्थ थे। एथेंस के निवासियों ने व्यापार में बहुत उन्नति की जिसके कारण वहाँ नागरिक सभ्यता का विकास हुआ।

सातवीं शती ई. पू. में राजतंत्र के स्थान पर धनिकों के अल्पतंत्र की स्थापना हुई जिससे अधिकतर भूमि किसानों के हाथो से धनिको के हाथो में चली गई। बहुत से किसानों ने पहले भूमि को धरोहर (गिरवी, रहन) के रूप में रखा फिर परिवार के सदस्यों को भी धरोहर के रूप में रख दिया, अंततः वे सभी दास बन गये। एथेंस में कुलीन वर्ग और दास के अतिरिक्त कुछ स्वतंत्र नागरिक भी थे, ये डेमोस कहलाते थे। इसमें किसान, मजदूर, कारीगर और व्यापारी थे। ये लोग अल्प तंत्रीय शासन से असन्तुष्ट थे। इनके संघर्ष के फलस्वरूप 594 ई.पू. में सोलन को नया मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। सोलन ने गिरवी प्रथा को समाप्त कर दिया और एथेंस के सभी नागरिकों को दास प्रथा से मुक्त कर दिया तथा यह नियम भी बनाया कि भविष्य में एथेंस का कोई भी निवासी ऋण ना चुका सकने के कारण दास नहीं बनाया जाएगा। उसके सुधारों से निर्धन और मध्यम दोनो वर्ग को लाभ हुआ। न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों का चुनाव भी नागरिकों के हाथों में आ गया। 469 से 429 ई. पू. में पेरिक्लीज के नेतृत्व में एथेंस का लोकतंत्र उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया। यहाँ आधुनिक मंत्रीमण्डल के समान शासन चलता था। एथेंस के लोकतंत्र में नागरिकों को राजनीतिक अधिकार और स्वतंत्रता प्राप्त थी। पेरिक्लीज के समय में कुल जनसंख्या का थोडा–सा भाग ही नागरिक वर्ग के अन्तर्गत आता था।

युद्ध और यूनानी लोकतंत्र की समाप्ति –

पाँचवी शती ई. पू. में एथेंस के लोकतंत्र को दो युद्धों में फंसना पड़ा जिसके कारण उसकी महानता समाप्त हो गई। एथेंस को पहला युद्ध शक्तिशाली ईरानी साम्राज्य तथा उसके सम्राट दारा के विरूद्ध लड़ना पड़ा। दारा ने पहले ही सिंधु नदी से लेकर एशिया माइनर तक के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था, और अब उसने इजियन सागर को पार करके विजय हेतु यूनान पर आक्रमण किया। उसकी बड़ी सेना एक जहाजी बेड़े की सहायता से एथेंस के निकट मैराथन नामक स्थान पर जा उतरी। यूनान के इतिहास में पहली बार सारे राज्यों ने मिलकर एक शत्रु के विरूद्ध युद्ध किया। यूनानी सेनाएँ संख्या में बहुत कम थी फिर भी 490 ई. पू. के मैराथन के युद्ध में वे इतनी वीरता से लड़े की ईरानी सेनाओं को पीछे खदेड़ दिया।

एथेंस और स्पार्टा के बीच 431 ई. पू. से 404 ई. पू. तक पेलोपोनीशियन युद्ध हुआ। इस युद्ध के कारण एथेंस का पतन हो गया। ईरानी युद्धों के समय एथेंस ने अन्य यूनानी राज्यों से मिलकर एक संघ बनाया था। उस युद्ध के बाद अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए इस संघ की सहायता से अपनी नौ–सेना की

शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। इससे स्पार्टा के निवासी भयभीत हो गए। सदा से ही स्पार्टा तथा एथेंस के बीच गर्मा–गर्मी चलती थी। इस युद्ध में कुछ राज्यों ने एथेंस तथा कुछ ने स्पार्टा का साथ दिया। इस युद्ध में एथेंस की पराजय हुई। इसी के साथ इस राज्य में लोकतंत्र की समाप्ति हो गई।

सिकन्दर का साम्राज्य –

एथेंस की हार के बाद मकदूनिया के राजा फिलिप ने यूनान के अधिकतर राज्यों पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र सिकन्दर को अपने पिता की बड़ी सेना पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली और 20 वर्ष की अवस्था में सिकन्दर संसार विजय पर निकला। 336 ई. पू. से 323 ई. पू. के 13 वर्षो के समय में उसने यूनानी नगर राज्यों को अपना नेतृत्व स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया। इसी के साथ उसने उस समय के सबसे महान और शक्तिशाली ईरानी साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह भारत की सीमा पर आ गया यहाँ वह 326 ई. पू. में झेलम के तट पर बहादुर राजा पोरस से टकराया लेकिन पोरस की वीरता ने सिकन्दर की सेना के दाँत खट्टे कर दिये।

सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके सेनापतियों ने उसके राज्य को आपस में बाँट लिया। उसके एक सेनापति सेल्यूकस को ईरान, मेसोपोटामिया और सीरिया प्राप्त हुए। बाद में सेल्युकस ने भारत पर आक्रमण किया। लेकिन चन्द्रगुप्त मौर्य ने उसे हरा दिया तथा मौर्य साम्राज्य ने सेल्युकस को संधि के लिए बाध्य किया।

सिकन्दर का एक सेनापति टाल्मी था। वह मिश्र, फिलिस्तीन तथा फिनीशिया का शासक बना। मिश्र की विजय के उपलक्ष्य में सिकन्दर ने सिकंदरिया नगर बसाया था। टाल्मी ने सिंकदरिया में कला, साहित्य तथा शिक्षा की देवी का एक मन्दिर बनवाया। यह म्यूजियम नाम से जाना जाता है। इसमें एक वेधशाला और एक पुस्तकालय था। टाल्मी की मृत्यु के बाद भी यहाँ पर अच्छे काम चलते रहे। रेखागणित का विद्वान यूक्लिड इसी स्थान पर रहता था। भूगोल के विद्वान ऐरिस्टोथीनीज ने पृथ्वी की परिधि का हिसाब यहीं लगाया। आर्कमिडीज के सिद्वान्त का प्रतिपादन भी इसी म्यूजियम में हुआ था।

प्राचीन यूनानियों का योगदान –

यूनान के जिस वैभव को संसार भूल नहीं सकता, वह पेरिक्लीज के समय के नगर–राज्य एथेंस का वैभव था। किन्तु यूनानी सभ्यता चरम पूर्णता को न पा सकी क्योंकि वहाँ जन–जन में असमानता थी। दास ही सारा कार्य करते थे। यदि दास सारा कार्य नहीं करते तो यूनान के नागरिकों को उन नए विचारों के चिंतन का पर्याप्त समय ही नहीं मिलता जिसके कारण वे उच्चस्तरीय जीवन बिता सके।

यूनानी नागरिकों का जीवन बहुत सरल था। पुरूष प्रतिदिन खेलों में भाग लेते थे, व्यायाम करते थे, रात को खाने के साथ शराब और संगीत से अपने को प्रसन्न रखते थे। ये जीवन, सत्य, सौन्दर्य, राजनीति तथा दर्शन जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा करते थे।

लड़कियों की शिक्षा घर में ही होती थी। वे राजनीति में बहुत कम भाग लेती थीं। विवाह तथा देवी देवताओं की उपासना के अवसर पर उत्सव और अवकाश होते थे। इस प्रकार का एक उत्सव, ओंलम्पिक खेल, आज भी विश्व स्तर पर आयोजित होता है। जियस देवता के सम्मान में यह उत्सव हर चौथे वर्ष मनाया जाता था। इसमें भाग लेने के लिए यूनान के कोने कोने से प्रतिभागी व दर्शक आते थे।

यूनानी साहित्य –

यूनानियों ने संसार को कई महाकाव्य, काव्य, नाटक और इतिहास ग्रंथ दिये। इलियड और ओडिसी की गणना संसार के श्रेष्ठ महाकाव्यों में की जाती है। छोटी यूनानी कविताएँ 'लिरिक' कहलाती थी क्योंकि वे लायर नामक वाद्य यंत्र के साथ गाई जाती थी। महान कवयित्री सैफो ने प्रेम और प्रकृति सौन्दर्य पर गीत गाए। लघु गीत लिखने वाले सर्वश्रेष्ठ कवियों में पिण्डार भी था, जिसने विजयी खिलाड़ियों की प्रशंसा में कविताएँ लिखी।

दुखांत और सुखांत दोनों प्रकार के श्रेष्ठ नाटक यूनान में लिखे गए। यूनानी नाट्यशाला के खंडहर आज भी ईजियन सागर के निकट के क्षेत्रों में सब जगह देखे जा सकते हैं।

''प्रोमिथियस बाउंड'' के लेखक एशिलस यूनानी दुखान्त नाटकों के संस्थापक थे। यूनानी दुखांत नाटकों के लेखकों में सर्वश्रेष्ठ सोफोवलीज थी। उसने ईडिपस रेक्स, एण्टिगोन और इलोट्रा नामक नाटक लिखे जिनकी प्रशंसा सारे संसार में होती है। नाटककार यूरिपिडिज ने युद्ध की निंदा की, उसका एक प्रसिद्ध नाटक ''ट्रोजन वीमेन'' है।

यूनान के सुखांत नाटकों का सर्वश्रेष्ठ नाट्यकार एरिस्टोफेनीज था। उसने दर्शकों के सामने व्यंग्य और हास्य से भी यूनानी गणमान्य नागरिकों का मजाक अपने नाटकों में उड़ाया। हेरोडोटस ने, जिन्हें यूनान में इतिहास का जनक भी कहते हैं, यूनान और ईरान के युद्धों का इतिहास लिखने के लिए खूब भ्रमण किया।

यूनानी दर्शन –

अनेक दर्शनों का विकास यूनान में हुआ। एक विचारधारा के प्रतिपादकों ने भौतिक जगत के स्वरूप के विषय में प्रचलित पौराणिक कथाओं और इनके विषय में तर्क संगत विचार प्रकट किया। दूसरी विचारधारा के प्रतिपादकों का विश्वास था कि सभी वस्तुएँ परमाणुओं से बनी हुई हैं और इन परमाणुओं के विन्यास की भिन्नता के कारण इस विश्व में भिन्न–भिन्न प्रकार के जीव पाए जाते हैं। इस शाखा का श्रेष्ठ दार्शनिक डेमोक्रिटस था। आत्मा या आध्यत्मिक जगत का अस्तित्व उसने नहीं माना।

तीसरी विचारधारा के प्रतिपादक 'सोफिस्ट' अर्थात बुद्धिमान कहलाए। इनका विश्वास था कि संसार में कोई परम सत्य नहीं है। वे प्रत्येक तथाकथित सत्य का मूल्यांकन मनुष्यों के ऊपर उसके प्रभाव से करते थे। उनके अनुसार प्रत्येक चींज का मापदण्ड मनुष्य है।

यूनान के सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात, प्लेटो, अरस्तु थे। सुकरात का विश्वास था कि ज्ञान सही आचरण और सुख का रास्ता दिखाता है। अज्ञानता से कई बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं। उन्होंने एथेंस में प्रचलित विश्वासों की कटु आलोचना की। अतः उन्हें युवकों को पथभ्रष्ट करने तथा नये देवताओं का प्रतिपादन करने के जुर्म में मृत्यु दण्ड दिया गया। वस्तुतः वह युवकों को प्रत्येक बात में सच्चाई जानने की शंका करने को प्रोत्साहित करता था। जिन यूनानियों के हाथ में राजसत्ता थी, वे ऐसे विचारों को स्वीकार करने को तैयार न थे, अतः उन्होने सुकरात को विषपान करने के लिए विवश किया।

सुकरात का प्रमुख शिष्य प्लेटो था। जिसने 'रिपब्लिक' नाम की प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में प्लेटो ने ऐसे आदर्श समाज की कल्पना की जिसमें समाज तीन वर्गों में बंटा हो। उसने सबसे निम्नतम वर्ग में किसान, कारीगर और व्यापारी, मध्यम वर्ग में योद्धा तथा उच्चतम वर्ग में बुद्धिजीवी रखे। उसने सारी राजनीतिक शक्ति बुद्धिजीवियों के हाथ में रखी।

यूनान के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में एक अरस्तु था। वह उस अकादमी का विद्यार्थी था, जिसकी स्थापना प्लेटो ने की थी। अरस्तु एक दार्शनिक के साथ वैज्ञानिक भी था। उसने अपने समय के सारे विज्ञानों का अध्ययन किया और चिकित्सा शास्त्र, प्राणिशास्त्र और ज्योतिष के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह मध्यम मार्ग में विश्वास रखता था, अर्थात् न तो पूर्णतया भोग विलास के जीवन में और न पूर्णतया विरक्ति में।

दो अन्य महत्वपूर्ण दार्शनिक विचारधाराओं का प्रतिपादन हुआ – स्टोइक एवं एपिक्यूरियन। स्टोइक विचारधारा के दार्शनिक नियतिवादी थे। उनका मत था कि मनुष्य को अपने भाग्य से सन्तुष्ट रहना चाहिए क्योंकि भाग्य बदलना उसकी शक्ति के बाहर है। इन दार्शनिकों के अनुसार सभी मनुष्यों का उद्देश्य चित्त की शान्ति की प्राप्ति होना चाहिए। उनका मत था कि मनुष्य को सुख–दुख और पाप–पुण्य के प्रति उदासीन रहना चाहिए।

एपिक्यूरियन विचारधारा के दार्शनिकों का मत था कि मनुष्य के लिए सबसे बडी भलाई सुख है। उनका विश्वास था कि देवताओं का मानव–कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे मनुष्यों को सादा, निर्भीक, गुणवान जीवन बिताने का उपदेश देते थे।

विज्ञान –

यूनानियों के लिए विज्ञान और दर्शन में कोई अन्तर नहीं था क्योंकि सभी दार्शनिक भौतिक संसार के स्वरूप को बदलने का प्रयत्न करते थे। हिपोक्रेटीज ने यूनान में आधुनिक

चिकित्साशास्त्र की नींव यह कहते हुए रखी कि 'प्रत्येक रोग का कोई ना कोई प्राकृतिक कारण होता है और बिना प्राकृतिक कारणों के कुछ भी नही होता या घटता उसे "यूनानी चिकित्साशास्त्र का जनक" कहा जाता है।

सिंकदर की विजयों के पश्चात् यूनान में विज्ञान में बहुत प्रगति हुई। एरिस्टार्कस ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि पृथ्वी और अन्य ग्रह सूर्य के चारों और घूमते हैं। फिर भी सोलहवीं शती ई. तक उसके सिद्वान्त को स्वीकार नहीं किया गया और टॉल्मी के इस मत को कि पृथ्वी विश्व के केन्द्र में स्थित है, सभी वैज्ञानिक मानते रहे। एरिस्टोस्थनीज ने पृथ्वी की परिधि का जो हिसाब लगाया वह लगभग ठीक था उसमें केवल 320 कि.मी. की भूल थी। उसने विश्व का सही मानचित्र बनाया। सैकड़ों वर्ष पश्चात् कोलंबस ने उसी के विचारों पर आधारित मानचित्र का प्रयोग किया।

सिकंदरिया चिकित्साशास्त्र के अध्ययन का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। वहाँ चिकित्सों ने मानव–शरीर की चीर–फाड़ का अभ्यास किया और मानव शरीर–रचना का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया।

वास्तु कला तथा अन्य कलाएँ –

यूनानी वास्तुकला और मूर्तिकला के श्रेष्ठ उदाहरण उनके मंदिरों में मिलते हैं। यूनानी मंदिरों में एक ऐसा प्रकोष्ठ होता था जिसमें देवता की मूर्ति प्रतिस्थापित की जाती थी। इस प्रकोष्ट के चारों और स्तंम्भ होते थे। इन स्तम्भों की यह शैली यहाँ की वास्तुकला की विशेषता थी। एथीना का मंदिर पार्थेनन यूनानी वास्तुकला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

यूनान के निवासी मानव के सौन्दर्य और साहस का बहुत आदर करते थे। मानव सौन्दर्य को उभारने के लिए उन्होने सुगठित, स्वस्थ और मांसल शरीरों को पत्थरों में तराशा। प्राचीन यूनान के दो प्रसिद्ध शिल्पी माइरन और फिडियस थे। माइरन की सबसे प्रसिद्ध कृति डिस्कस (तश्तरी) फेंकने वाले की मूर्ति है। फिडियस की सबसे प्रसिद्ध कृति हर्माज की वह मूर्ति है जिसमें उसे शिशु डायोनीसस को लिए हुए दिखाया गया है। प्राचीन यूनानियों की उपलब्धियाँ मानव की सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण अंग हैं। उन्होने विश्व को "सौन्दर्य" दिया, और दिया आजादी का एक आदर्श, आजादी विचारों की, मन–मस्तिष्क के अनुसार कहने व लिखने की, किसी भी बात में विश्वास करने या न करने की और जीवन में आनन्द का अनुभव करने की।

रोम की सभ्यता

रोम की सभ्यता का मुख्य केन्द्र इटली था। इटली ने यूनान और रोम की संस्कृतियों को मिलाने की एक कड़ी का कार्य किया। यूनानी तथा उसके भी पूर्व की पश्चिमी एशिया की सभ्यताओं के विचार इटली होकर ही यूरोप पहुँचते थे।

इटली के सर्वप्रथम निवासी –

इटली के सर्वप्रथम निवासी उत्तरी अफ्रीका, स्पेन और फ्रांस से आकर यहाँ बसे थे। 200 ई. पू. के कुछ बाद भारत–यूरोपीय (भारोपीय) भाषाओं को बोलने वाले कुछ मनुष्य आल्प्स पर्वतों को पार करके यहाँ आकर बसने लगे। एट्रस्कन नामक जाति के लोग भी इटली के एक भाग में बस गये। इटली के निवासी इन्हीं सब जातियों के वंशज थे। रोम की सभ्यता के विकास का आरम्भ लगभग छठी शती ई. पू. में हुआ और जब यूनानी सभ्यता का पतन हो गया तो यह सभ्यता उन्नति के शिखर पर पहुँच गई।

रोम का आरम्भिक इतिहास –

रोम नगर की स्थापना टाइबर नदी के दक्षिण में लैटियम नाम के जिले में लगभग 1000 ई. पूर्व में हुई। लैटियम नामक स्थान के कारण ही प्राचीन रोम के निवासियों की भाषा का लैटिन नामकरण हुआ। प्राचीन रोम में एक राजा, एक सभा और एक सीनेट होती थी। सबसे अधिक शक्ति सीनेट के हाथ में थी। वह राजा और सभा के प्रस्तावों को अस्वीकार कर सकती थी।

छठी शती ई. पू. के अन्त में राजा का पद समाप्त कर दिया गया और गणतन्त्र की स्थापना हुई। रोम का समाज दो वर्गों में बंटा था – पैट्रिशियन और प्लीबियन। पैट्रिशियन उच्च वर्ग माना जाता था। जिसमें धनी लोग और जमींदार सम्मिलित थे। उनके हाथ में सीनेट की पूरी शक्ति थी। प्लीबियन वर्ग में मजदूर, छोटे किसान, कारीगर, छोटे व्यापारी और योद्धा

सम्मिलित थे। 459 ई. पू. में कानूनों की संहिता तैयार की गई। इन कानूनों को लकड़ी की तख्तियों पर लिखा गया। वे बारह तख्तियों के कानून कहलाते थे। इससे अधिकतर व्यक्तियों को अपने कानूनी अधिकारों की जानकारी हो गई और सरकारी कर्मचारियों के लिए कानून का उल्लंघन करना कठिन हो गया।

कार्थेज से युद्ध –

सम्पूर्ण इटली पर गणतंत्रीय प्रमुख के पश्चात् रोम वालों की नए प्रदेशों पर अधिकार करने की लालसा बढ़ी। इसी कारण उन्हें अफ्रीका के उत्तरी तट पर स्थित कार्थेज नगर के निवासियों से कई युद्ध करने पड़े। कार्थेज की स्थापना नवी शती ई. पू. में फिबीशिया के निवासियों ने की थी। किन्तु बाद में वह स्वतंत्र हो गया था। सिसिली की भूमि के सम्बंध में रोम और कार्थेज में वैमनस्य हो गया जिसके कारण दोनो में युद्ध हुआ। रोम निवासियों को यह भय था कि कार्थेज निवासी सिसिली पर अधिकार कर लेंगे, इसलिए उन्होने कार्थेज पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण की कड़ी में 264 से 146 ई. पू. तक चलने वाले युद्ध प्यूनिक युद्ध कहलाते हैं। कार्थेज के लोग अपने सेनापति हैन्नीवाल के नेतृत्व में वीरता से लड़े किन्तु अंत में उनकी पराजय हुई और रोम के निवासियों ने कार्थेज के नगर में आग लगा दी और वहाँ के हजारों निवासियों को दास बनाकर बेच दिया। पहली शती ई. पू. के आरम्भ तक रोम निवासियों ने यूनान और एशिया माइनर पर अधिकार कर लिया और मिश्र को भी अपने संरक्षण में ले लिया।

जूलियस सीजर –

निरन्तर लड़े जाने वाले युद्धो के परिणामस्वरूप रोम का कुलीन वर्ग अधिक से अधिक धनी तथा सम्पन्न बनता चला गया और सर्वसाधारण की स्थिति दयनीय होती गयी। इसका मुख्य कारण रोमन शासन प्रणाली में निहित दोष थे। अतः जनता ने सुधारों की मांग को लेकर आन्दोलन छेड़ दिया। सेनापति मेरियस ने जनता का पक्ष लिया। परन्तु रोम की सरकार ने सेनापति सुला की सहायता से मेरियस को पराजित करके विद्रोह को कुचल दिया। अब सुला स्वयं तानाशाह की भांति शासन करने लगा। सुला की मृत्यु के बाद, रोम के तीन प्रमुख सेनानायकों पाम्पी, क्रेसस और सीजर ने मिलकर "ट्राइम विरेट" की स्थापना की और शासन चलाने लगे। कुछ दिन बाद क्रेसस की मृत्यु हो गई। सीजर युवावस्था से ही महत्वाकांक्षी था। वह हर एक व्यक्ति से घनिष्ठता पूर्वक हाथ मिलाकर बात करता था। लोगों के लिए 'रोटी और खेल तमाशों' पर धन–व्यय करके और वोटों के लिए पैसा देकर वह जनता में बहुत लोकप्रिय हो गया। उसे राजनीतिक शक्तियाँ तो पहले से ही प्राप्त थी परन्तु अब उसने अपनी एक निजी सेना की आवश्यकता का अनुभव किया। अतः उसने गॉल प्रान्त (सम्पूर्ण फ्रांस) की सूबेदारी प्राप्त कर ली। इस पद पर काम करते हुए उसने अपनी निजी सेना का संगठन किया और आठ वर्षों के निरन्तर संघर्ष में गॉल जाति को पराजित करके सम्पूर्ण जर्मनी, इग्लैंड आदि देशों पर रोम का शासन स्थापित किया। जैसे–जैसे सीजर की सफलताओं की सूचना रोम पहुँचने लगी वैसे–वैसे रोम में उसकी लोकप्रियता बढ़ती गयी परन्तु यह बात रोम के सीनेट को पसन्द नहीं आई। सीनेट ने सीजर को आदेश भेजा की वह अपनी सेना को भंग करके रोम लौट आए। सीजर लौट तो आया, परन्तु अपनी सेना सहित। उसने सीनेट की आज्ञा का उल्लंघन किया और उसके मुँह से यह प्रसिद्ध वाक्य निकला था– "दि डाई इज कास्ट" (पासा फेंका जा चुका है)। अब सीजर रोमन साम्राज्य का बिना ताज का सम्राट बन गया। रोम की सीनेट ने भी उसको अधिनायक स्वीकार कर लिया। रोम का अधिनायक बनने के बाद सीजर ने सारे विरोधियों का दमन करके शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना की। 144 ई.पू. में सीनेट ने उसको स्थायी रूप से अधिनायक बना दिया। उसे सेन्सर, कौन्सल तथा ट्रिब्यून के अधिकार सौंप दिये और उसे पौन्टीफैम्स, मैम्सीमर्स, इम्पेरेटर आदि की उपाधियाँ प्रदान की गई। उसके नाम के सिक्के ढाले गये और उसे तीन बार राजमुकुट भी पेश किया गया। परन्तु सीजर ने उसे धारण करना अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह रोमन परम्पराओं और जनतांत्रिक संस्थाओं का अन्त करने के पक्ष में नहीं था। उसने अपना सारा ध्यान सुधार और संगठन की तरफ केन्द्रित किया। सूबों के लगान तथा अन्य करों में कमी की गई और राजस्व वसूली की ठेकेदारी प्रथा को समाप्त करके यह काम सरकारी संस्थाओं को सौंपा गया। सीजर ने अपने अल्पशासन काल में महत्वपूर्ण सुधार किये परन्तु उसके विरोधियों को उसकी सफलतायें बैचेन करने लगी। पॉम्पी के अनुयायियों – केसियस और ब्रूटस ने 15 मार्च 44 ई.पू. के दिन सीजर की हत्या कर दी।

जूलियस सीजर एक बहुमुखी प्रतिभा–सम्पन्न व्यक्ति था। सैनिक, प्रशासक, विधायक, राजनीतिज्ञ और साहित्यकार सभी दृष्टियों से वह उत्कृश्ट था। मोनसन ने लिखा है कि "उसकी संगठन शक्ति अद्‌भुत थी। वह राजा था परन्तु राजाओं जैसा व्यवहार कदापि नहीं किया।" वास्तव में वह अपने युग का विशिश्ट व्यक्ति था। उसके द्वारा संशोधित पंचांग (कैलेण्डर) जिसे "जूलियनी पंचांग" कहा जाता है, आधुनिक समय तक चलता आ रहा है।

ट्राइमविरेट –

जूलियस सीजर की हत्या के परिणाम स्वरूप रोम में उसके समर्थकों तथा विरोधियों में नवीन संघर्ष उत्पन्न हो गया और रोम में गृह–युद्ध की आशंका बढ़ गई। चारों ओर अव्यवस्था पैदा हो गई। ऐसी स्थिति में रोम में दूसरा 'ट्राइमविरेट' स्थापित किया गया जिसके सदस्य थे, आम्टेवियन, जो सीजर का दत्तक पुत्र था, मार्क एन्टोनी जो आम्टेवियन का बहनोई भी था और लेपीडस जो सीजर का अनुयायी था। इस त्रिगुट के सामने पहला काम था सीजर के हत्यारों को सजा देना। सीजर के हत्यारे केसियस और ब्रूटस अपनी सेनाओं के साथ मेसीडोनिया की तरफ चले गये थे। रोम की सेना ने उसका पीछा किया और 42 ई. पू. में फिलिपी के युद्ध में केसियस और ब्रूटस को बुरी तरह परास्त होना पड़ा। प्रतिशोधात्मक यन्त्रणा की कल्पना से घबराकर उन दोनों ने आत्महत्या कर ली। इसके बाद ट्राइमविरेट ने उन हजारों लोगों को बड़ी निर्ममता के साथ लूटा और मारा, जिनके बारे में यह संदेह था कि सीजर की हत्या से उनका कुछ भी सम्बन्ध था।

एन्थेनी की पराजय –

सीजर के विरोधियों का सफाया करने के बाद ट्राइमविरेट के सदस्यों में सत्ता प्राप्ति के लिए आन्तरिक संघर्ष शुरू हो गया। लेपीडस इस संघर्ष से शीघ्र ही हट गया और शेष दोनों सदस्यों ने रोमन साम्राज्य को आपस में बाँट लिया। रोम सहित पश्चिमी देशों का शासन आक्टेवियन को मिला और मिश्र सहित पूर्वी देशों का शासन मार्क एन्टोनी को मिला। आम्टेवियन अत्यधिक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह सीजर के पद चिन्हों पर चलना चाहता था। मार्क एन्टोनी मिश्र की खूबसूरत रानी क्लोपेट्रा से प्रेम करने लगा और उसने आम्टेवियन की बहिन तथा अपनी प्रथम पत्नी को तलाक दे दिया, जिससे दोनों पक्षों में तनाव बढ़ता गया, जिसका निर्णय 31 ई. पू. में ऐक्टियम के नौ युद्ध में हुआ। इस युद्ध में आम्टेवियन की विजय हुई। पराजित एन्टोनी और क्लोपेट्रा ने आत्महत्या कर ली। इसके बाद गृह युद्ध का अन्त हो गया और आम्टेवियन भूमध्य सागरीय देशों का एकमात्र स्वामी बन गया।

साम्राज्यवादी युग की शुरूआत –

ऐक्टियम युद्ध में सफलता प्राप्त करके आम्टेवियन रोम आया तो उसका भव्य स्वागत किया गया। उसने सीजर की उपाधि धारण की और "प्रिन्सेप" और 'इम्परेटर' की उपाधियाँ भी जोड़ ली। शक्तिहीन सीनेट ने उसे "आगस्टस" (सौभाग्यशाली) की उपाधि से विभूषित किया। भविष्य में वह आगस्टस सीजर के नाम से विख्यात हुआ। आगस्टस ने 31 ई. पू. से 14 ई. तक शासन किया। इन काल में पूर्ण शान्ति रही और यहीं से 'पैक्रोमाना' (रोमन शान्ति) की गिनती शुरू की जाती है।

प्रशासनिक सुधार –

ऑगस्टस रोमन साम्राज्य की शान्ति और समृद्धि के लिए सीजर के कार्यक्रम को पूरा करना चाहता था। उसने अपनी सैनिक शक्ति का उपयोग साम्राज्य विस्तार के लिए नहीं अपितु साम्राज्य की सुरक्षा तक ही सीमित रखा। इसलिए उसने 'जैनस' के देवालय के द्वार भी बन्द करवा दिए। इस मन्दिर के द्वार केवल शान्तिकाल में ही बन्द करने की प्रथा थी। सीजर की भांति ऑगस्टस ने भी सूबों को नागरिकता के सभी अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान की ताकि वे लोग अपने आपको रोमन साम्राज्य के नागरिक अनुभव कर सकें। उसके इस व्यवहार से लोग उसे निःस्वार्थ, निर्लोभ एवं कर्तव्य परायण समझने लगे। उसने असेम्बली अथवा जनसभा में भी सुधार किया। उपद्रवी राजनीतिक दलों और उनकी संस्थाओं को बन्द कर दिया। सभा में व्याप्त भ्रष्टाचार का उन्मूलन किया गया। विरोधी और जिद्‌दी सदस्यों को हटा दिया गया। इस प्रकार असेम्बली पर भी उसका नियंत्रण स्थापित हो गया।

ऑगस्टस ने प्रान्तीय शासन व्यवस्था की तरफ भी

पूरा–पूरा ध्यान दिया। उसने प्रान्तों में सत्यनिष्ठ सूबेदार नियुक्त किये। कर व्यवस्था में सुधार किया गया। ऑगस्टस रोमन जाति की शुद्धता और रक्त रक्षा का प्रबल समर्थक था। 41 वर्ष तक शासन करने के बाद वह परलोकगामी हुआ। उसके शासन काल में जो शान्ति व्यवस्था रही, संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में जो उन्नति हुई, उसके आधार पर उसके शासनकाल को 'स्वर्ण युग' के नाम से पुकारा जाता है।

मूल्यांकन –

रोम साम्राज्य की स्थापना में ऑगस्टस की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही थी। वास्तव में, उसके शासनकाल से ही साम्राज्यवादी रोम का इतिहास शुरू होता है। उसने साम्राज्य–विस्तार के स्थान पर साम्राज्य को संगठित एवं सुदृढ़ बनाने की तरफ विशेष ध्यान दिया। उसने यातायात के मार्गों को उन्नत बनाकर तथा रोम को सभी प्रमुख मार्गों से जोड़कर उसे यूरोप का केन्द्र बना दिया। शिक्षा, साहित्य एवं कला को प्रोत्साहन दिया। सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में व्याप्त बुराईयों को दूर करने के अथक प्रयत्न किये गये। वह गर्व के साथ कहा करता था कि जब उसे रोम मिला तब वह ईंटों का नगर था और जब उसने रोम को छोड़ा तब वह संगमरमर का नगर बन चुका था। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह मेधावी, व्यवहार कुशल और कार्यक्षम शासक था।

ऑगस्टस के उत्तराधिकारी –

ऑगस्टस के उपरान्त उसके चार वंशजों – टिबेरियस, कैलिगुला, क्लाडिअस और नीरो ने रोमन साम्राज्य पर निरंकुशतापूर्वक शासन किया। अन्तिम सम्राट नीरो ने संगीत, कला और साहित्य को प्रोत्साहन दिया और भवनों का निर्माण कराया। परन्तु नीरो वह व्यक्ति था जिसने अपनी माता, भाई, दो पत्नियों तथा अपने गुरू की हत्या की थी। जिस पर रोम को स्वाहा (जलाने) करने का दोष भी लगाया जाता है। कहावत है "जब रोम जल रहा था, नीरो वंशी बजा रहा था।" नीरो ने 68 ई. में आत्महत्या कर ली थी। उसकी मृत्यु के बाद वैस्पासियन सम्राट बना। 108 ई. तक 6 अच्छे सम्राटों का शासन रहा। इसके बाद रोमन साम्राज्य की एकता खण्डित होने लग गई। अन्त में कॉन्सटेन्टाइन रोमन साम्राज्य का एक मात्र सम्राट बनने में सफल रहा।

कॉन्सटेन्टाइन (324–337 ई.) –

कॉन्सटेन्टाइन सदाचारी, संयमी, विवेकशील, कार्यकुशल और उदार विचारों का व्यक्ति था। उसने रोमन साम्राज्य के लिए एक नई विशाल राजधानी का निर्माण करवाया। और अपने नाम पर उसका नाम कॉन्सटेंटिनोपल (कुस्तुनतुनिया) रखा। राजनीतिक एवं प्रशासनिक केन्द्र हो जाने से उसका महत्व बढ़ता ही गया। उसने ईसाईयों के दो मुख्य सम्प्रदायों को मिलाकर मजहबी एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु इसमें उसे विशेष सफलता नहीं मिली। एशियाई देशों के ठाट–बाट और रीति–रिवाजों का उस पर प्रभाव पड़ा। वह अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझने लगा और अपने ऐश्वर्य और शान–शौकत पर इतना अधिक धन व्यय किया कि उसका राजकोष रिक्त हो गया।

कॉन्सटेन्टाइन को एक तरफ तो फारस के शासकों से और दूसरी तरफ मध्य एशिया के हूणों से हर समय चौकन्ना रहना पड़ा। हूण लोग रोमन साम्राज्य की पूर्व–यूरोपीयन सीमाओं पर छा गये। ऐसी स्थिति में 337 ई. में कॉन्सटेन्टाइन की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद भयंकर उत्तराधिकार युद्ध लड़ा गया। उधर 500 ई. तक बर्बर जर्मन कबीले रोम को जीत चुके थे। रोमन साम्राज्य का पतन हो गया। परन्तु कॉन्सटेन्टाइन द्वारा निर्मित कुस्तुनतुनिया का अस्तित्व कायम रहा और इसे राजधानी बनाकर 'पूर्वी रोमन साम्राज्य' नये नाम के साथ आने वाली कुछ शताब्दियों तक रोमन साम्राज्य की याद दिलाता रहा।

रोम के निवासियों का जीवन व उनकी संस्कृति –

रोम के प्रारम्भिक निवासी अधिकतर कृषि करते, भेड़ व गाय–बैल पालते अपने कपड़े सन और ऊन से स्वयं बनाते, और मिट्टी या लकड़ी के बर्तन काम में लाते थे। प्रत्येक परिवार चूल्हे की देवी–वेस्ता की पूजा करता था क्योंकि रोम निवासियों का विश्वास था कि वह घर की रक्षा करती है। परिवार में यद्यपि पिता और पति का सर्वोच्च अधिकार था, फिर भी रोम के निवासी अपनी स्त्रियों का आदर करते थे। रोम के निवासी भी उतने ही देवी–देवताओं की पूजा करते थे जितने की यूनान के निवासी। जुपिटर उनकी फसलों के लिए वर्षा करता, मार्स युद्ध में उनकी सहायता करता, जूनो उनकी स्त्रियों की रक्षा करता

और मर्करी उनके संदेश ले जाता था।

संसार के बड़े भाग पर अधिकार करने के पश्चात् रोम के निवासियों के जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गए। रोम का समाज इस समय चार वर्गों में बंटा था। अभिजात वर्ग के पास बड़ी–बड़ी जमींदारियाँ थी, तथा वे उच्च पदों पर नियुक्त किए जाते थे। दूसरे वर्ग में धनी व्यापारी और साहूकार थे। तीसरे वर्ग प्लीबियन में छोटे स्वतंत्र किसान और शहरों के निवासी थे जिनमें से बहुतों के पास कोई काम न था। चौथा वर्ग दासों का था जो सही मायनो में सारा काम करते थे।

कालांतर में मध्यवर्गीय निवासी कामचोर हो गए, श्रम से घृणा करने लगे और श्रम को दासो का ही कार्य समझने लगे तथा जीवन निर्वाह के लिए राज्य से आर्थिक सहायता मांगने लगे। जूलियस सीजर के शासन संभालने के समय रोम के लगभग 320000 निवासियों का भरण–पोषण राज्य किया करता था।

दासों का जीवन बहुत कठिन था। कितने ही घंटे कार्य करने के पश्चात् उन्हें कोठरियों में बंद रखा जाता था। हालांकि कुछ दासों का जीवन बेहतर स्थिति में था। कुछ दास अपने मालिक से भी अधिक शिक्षित तथा विद्वान थे।

उच्च वर्ग के अभिजात व्यक्ति और धनी व्यापारी महलों में रहते थे और अधिकतर समय भोग–विलास, हमामों तथा मनोविनोद में बिताते थे। नगरों की जनता ग्लेडिएटरों (तलवारबाजों) की प्रतियोगिताओं और रथों की दौड़ो को देखने जाती थी। ग्लेडिएटर की प्रतियोगिताओं और रथों की दौड़ों–दोनों में बहुत रक्तपात होता था।

रोम के निवासियों की देन –

रोम के शासको ने मिश्र, बेबीलोन, यूनान, पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार रोम तथा पश्चिमी संसार के निवासी पूर्व की सभ्यताओं के सम्पर्क में आए तथा प्राप्त विचारों के प्रसार में योगदान दिया।

कानून और सरकार –

संसार को रोम की सबसे बड़ी देन कानून और सरकार है। रोम में इसका प्रारम्भ बारह तख्तियों के कानूनों से हुआ। कालांतर में रोम के कानून का विकास तीन शाखाओं में हुआ– दीवानी कानून, जिसका प्रयोग रोम के नागरिकों के मुकदमों में किया जाता था। जनसाधारण का कानून, जिसका प्रयोग साम्राज्य की समस्त जनता के साथ किया जाता था और प्राकृतिक कानून, जिसका सम्बन्ध अधिकतर न्याय तथा कानून के दर्शन से था। अनेक यूरोपीय व अन्य देश अपने–अपने देशों की कानून प्रणाली का विकास करने के लिए रोम के विचारों के ऋणी हैं।

रोम के शासक अधिकतर अपने कानून और शासन–प्रणाली के कारण ही अपने इतने बड़े विस्तृत साम्राज्य में केन्द्र शासित सुव्यवस्था स्थापित कर सके जबकि यूनानी ऐसा करने में समर्थ नहीं हो सके। कानूनों के कारण यात्रा और व्यापार को प्रोत्साहन मिला। भारत और चीन तक व्यापारिक वस्तुओं का विनिमय होने लगा। दक्षिण भारत में चेन्नै के निकट एरिकमेडु नामक स्थान रोम के व्यापार की चौकी था। साम्राज्य के सभी भागों को जोड़ने वाली रोम की सड़कों की व्यवस्था इतनी अच्छी थी कि यह अंग्रेजी कहावत चल पड़ी कि 'सभी सड़कें रोम को जाती हैं।' रोम के निवासियों ने गणतंत्र की भावना का विकास किया था। लेकिन यहाँ के शासक विजित जनता को दास बना लेते थे जिससे वहाँ वास्तविक लोकतंत्र का विकास नहीं हो पाया।

भाषा, दर्शन तथा साहित्य –

रोम के निवासियों ने यूनानियों से जो वर्णमाला सीखी थी उसके आधार पर उन्होंने अपनी वर्णमाला का विकास किया और लैटिन भाषा पश्चिमी यूरोप में सभी शिक्षित व्यक्तियों की भाषा बन गई। विज्ञान में अब भी लैटिन भाषा के बहुत से शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं। कई यूरोपीय भाषाएँ – फ्रांसीसी, स्पैनिश, इतालवी का आधार लैटिन ही है।

रोम निवासियों ने यूनानी दर्शन को भी ग्रहण किया। एपीक्यूरियन और स्टोइक दर्शन रोम में बहुत लोकप्रिय थे। ल्यूक्रीटियस जिसने ''ऑन दि नेचर ऑफ थिंग्स'' (वस्तुओं के स्वरूप पर) नाम की कविता लिखी, वह आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता था, किन्तु शान्ति और पवित्र हृदय का समर्थक था, भोगविलास का नहीं। सिसरो एक प्रसिद्ध वक्ता था। वह स्टोइक दर्शन के अनुयायियों की भाँति चित्त की शांति को सर्वश्रेष्ठ भलाई समझता था। उसकी सबसे बड़ी देन

राजनीतिक तथा प्राकृतिक नियम की उसकी संकल्पना थी। सिसरो के अनुसार प्राकृतिक नियम वह कानून था जिसको तर्क द्वारा ज्ञात किया जा सके और जिसके द्वारा सभी मनुष्यों के प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा की जा सके। सीनेट में दिये उनके भाषण की अच्छी शैली का आज भी अनुकरण होता है। मार्कस ऑरीलियस भी स्टोइक दर्शन को मानने वाला था उसने मेडिटेशन नाम की पुस्तक लिखी थी। उसने जीवन किस प्रकार बिताना चाहिए उस पर अपने विचार इस पुस्तक में व्यक्त किये। उसका मत था कि जीवन का उद्देश्य सुख नहीं अपितु चित्त की स्थिरता है, वह उन सब बातों पर आचरण करता था जिसका वह उपदेश देता था। यद्यपि उसकी शक्तियाँ अपार थी फिर भी वह कभी भोग–विलास का जीवन नहीं बिताता था। स्टोइक दर्शन को मानने वाला एक अन्य विद्धान सेनेका था।

रोम की सभ्यता में साहित्य का भी विकास हुआ और कविता के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। होरेश की कविता में एपीक्यूरियन और स्टोइक विचारधारा का समन्वित दार्शनिक रूप मिलता है।

वर्जील भी एक महान् कवि था। उसकी 'ईनीड' नाम की रचना बहुत प्रसिद्ध है। इसकी शैली यूनानी महाकाव्यों इलियड व ओडिसी जैसी है। ईनीड में ट्रॉय के इनीस नामक पौराणिक वीर नायक के देश–विदेश में घूमने और उसके साहसपूर्ण कार्यों का वर्णन है।

रोम का सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार टैसिटस था। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तकों 'एनल्स' और 'हिस्ट्रीज' में अपने समय की अराजकता और भ्रष्टाचार का वर्णन किया है।

वास्तु कला तथा अन्य कलाएँ –

रोम के निवासी कुशल निर्माता थे। उन्होंने सबसे पहले कांक्रीट (रोड़ी) का प्रयोग आरम्भ किया और वे ईंटों और पत्थरों के टुकड़ों को मजबूती से जोड़ सकते थे। उन्होंने वास्तुकला में डाट और गुम्बद बनाकर दो महत्वपूर्ण सुधार किए। रोम में भवनों की दो–तीन मंजिलें होती थी। और इनमें डाटें गोल होती थी। ये डाट नगर के द्वारों, पुलों, बड़े भवनों और विजय स्मारकों के बनाने में काम में लाई जाती थी। डाटों का प्रयोग कोलोजियम बनाने में भी किया जाता था।

गुम्बद औंधे कटोरे के समान भवन की छत होती थी। इस प्रकार का गुम्बद रोम के प्रसिद्ध मन्दिर पेनपियन में देखा जा सकता है।

रोम की अभियांत्रिकी कला के श्रेष्ठ उदाहरण उसकी जलव्यवस्था, स्नानागार और सड़कें हैं। रोम तथा अन्य नगरों के निवासियों को पानी देने के लिए पानी के पाईप लगाए जाते थे। इन पाइपों में से कुछ तो 70 किलोमीटर तक लम्बे थे।

रोम निवासियों ने यूनानियों की मूर्तियों के अनुरूप अपनी मूर्तिकला का विकास किया किन्तु उनमें एक अन्तर भी था। यूनानी लोग अपने आदर्शों को व्यक्त करने के लिए मूर्तियाँ बनाते थे, किन्तु रोम के निवासी इस कला का उपयोग मनुष्य को यथावत मूर्त करने के लिए करते थे। रोम के निवासियों ने भित्तिचित्रों को बनाने की कला का भी विकास किया जिसके द्वारा पूरी की पूरी दीवार चित्रित की जाती थी।

विज्ञान –

लोक–सेवाओं में रोम ने पहल की। उन्होने ही सबसे पहले निर्धन रोगियों को मुफ्त औषधि देने का प्रबन्ध किया। रोमनिवासियों की दूसरी देन थी उनका पंचांग (कैलेण्डर) जो थोड़े परिवर्तित रूप में आज समस्त देशों में चलाया जाता है। किन्तु पंचांग में उनकी मौलिक देन कुछ नहीं थी क्योंकि आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन भारत, चीन और मिश्र पहले ही कर चुके थे।

आधुनिक पाश्चात्य पंचांग में कुछ महीनों के नाम सीजर लोगों के नामों से लिए गए हैं। जुलियस सीजर से जुलाई आगस्टस सीजर से अगस्त तथा सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर का नाम लैटिन भाषा के उन शब्दों से है जिनका अर्थ सातवाँ, आठवाँ, नौवा और दसवाँ होता है। ये नाम तब सार्थक थे जब रोम का नया वर्ष मार्च से आरम्भ होता था।

रोम सभ्यता का पतन –

रोम सभ्यता के पतन के सभी कारणों का सम्बन्ध साम्राज्यवाद से है। साम्राज्यवाद के कारण लोकतंत्र की समाप्ति हुई, और दासता को प्रोत्साहन मिला। नगरों में जनसमुदाय आलसी हो गया। राजनीतिक संघर्ष हुए और भ्रष्टाचार फैला। दासों पर सभी कार्यों और उत्पादन की जिम्मेदारी होने से उद्योगों व कृषि की उन्नति नहीं हो सकी और दासों के लगातार विद्रोह भी होते रहे।

रोम में ईसाई मजहब फैलने से दासों पर आधारित इस

साम्राज्य की शक्ति कुछ कम हो गई। ईसाई मजहब ने पीड़ित वर्ग को बहुत आकर्षित किया। इस मजहब के प्रति आस्थावान व्यक्ति सम्राटों के अत्याचारों को सहन करने और अपनी बलि देने तक को तैयार हो गए। कॉन्सेण्टाइन पहला सम्राट था, जिसने चौथी शती ई. में ईसाईयों को गिरजाघर बनाने और खुले तौर पर पूजा करने का अधिकार दे दिया। रोम के साम्राज्य पर अन्तिम प्रहार उत्तर के हमलावरों ने किया। वे लोग जर्मन कबीलों से थे। पहले वे सीमाओं पर हमले करते रहे इसके बाद वे रोम नगर पर हमला करने लगे। अंततः 476 ई. में बैंडल लोगों के एक आक्रमण ने पश्चिमी साम्राज्य के सम्राट को उखाड फेंका और उनका सरदार रोम का राजा बन बैठा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

1. 'कुल चिन्ह' किसे कहते हैं ?
2. 'स्फिग्स' किसे कहते हैं ?
3. 'ममी' क्या हैं ?
4. 'बेबीलोन सभ्यता' के प्रमुख देवी–देवताओं के नाम लिखिये।
5. प्राचीन चीन के मुख्य धर्म कौन से हैं ?
6. राजस्थान में सिंधु सरस्वती सभ्यता का कौन सा पुरास्थल है?
7. सिंधु सरस्वती लिपि की विशेषता लिखिये।
8. लिरिक किसे कहते हैं ?
9. ओलंपिक खेल कहाँ एवं क्यों होते थे ?
10. रोम व्यापार की चौकी भारत में कहाँ स्थित थी?

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

1. नवपाषाण युग की प्रमुख विशेषताएँ लिखिये।
2. प्राचीन मिश्र की सभ्यता में स्त्रियों की दशा का वर्णन कीजिये?
3. बेबीलोन सभ्यता की विश्व को प्रमुख देन क्या है ?
4. प्राचीन चीन की सभ्यता में लोक सेवा आयोग के क्या कार्य थे?
5. प्राचीन चीन की सभ्यता के प्रमुख आविष्कारों का वर्णन कीजिये।
6. सिंधु–सरस्वती सभ्यता की जल निकास प्रणाली का वर्णन कीजिये।
7. एथेंस में सोलन के प्रमुख सुधारों का वर्णन कीजिए।
8. स्पार्टा के निवासियों की रूचियों का वर्णन कीजिये।
9. रोमन सभ्यता में दासों की भूमिका का वर्णन कीजिये।
10. जूलियस सीजर के प्रमुख कार्यों का उल्लेख कीजिये।

निबन्धात्मक –

1. प्राचीन मिश्र के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन की विवेचना कीजिये।
2. प्राचीन चीन की सभ्यता में लाओत्से एवं कन्फ्यूसियस के विचारों का वर्णन कीजिए।
3. सिंधु–सरस्वती सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. प्राचीन यूनान के साहित्य, दर्शन, कला एवं ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति की विवेचना कीजिए।
5. आगस्टस के शासन काल को रोम इतिहास का स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है? विवेचना कीजिए।